कलावती

प्रकाशक

बृहद् (बड़) गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य

श्रीचन्द्रसिंह सूरीश्वर शिष्य

पंडित काशीनाथ जैन

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड, के "नरसिंह प्रेस" में

मैनेजर पण्डित काशीनाथ जैन

द्वारा मुद्रित।

प्रथमवार २०००] सन् १९२४ [मूल्य ॥)

वक्तव्य
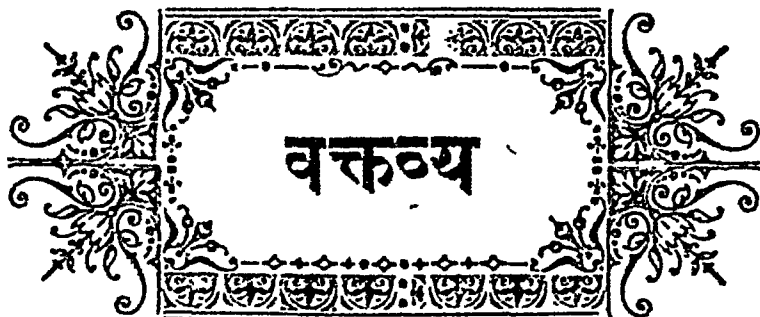
आज हमें बड़ाही आनन्द है, कि हम अपने प्रेमी पाठक और पाठिकाओंको सती कलावतीकी शिक्षा-प्रद जीवनी उपहार दे रहे हैं। यह जीवनी स्त्री-पुरुषों और बालक बालिकाओं सबके लिये समान भावसे मनोरञ्जक और बोधप्रद है। इसके अवलोकनसे सतीके सतीत्व का ख़ासा उपदेश प्राप्त होता है।

आशा है, कि हमारी अन्यान्य पुस्तकोंकी भाँति प्रेमी पाठक और पाठिकायें "कलावती" का भी यथेष्ट आदर करेंगे और इसी तरह हमें निरन्तर साहित्य सेवा करनेके लिये प्रोत्साहित करते रहेंगे।

ता० २८-६-२४
२०१, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन

समर्पण

सकल शास्त्र सम्पन्न, परम पूजनीय न्यायाम्भोनिधि
श्रीमद् विजयानन्दसूरीश्वरजीके प्रशिष्य साहित्यानुरागी
विद्वद्वर्य मुनिगुण-विभूषित पूज्यवर्य

श्रीकर्पूरविजयजी

के

कर-कमलोंमें

यह मेरी 'कलावती' नामक लघु पुस्तिका सादर
भेंट करता हूँ आशा है, अंगीकार कर
अनुग्रहीत करेंगे।

आपका
काशीनाथ जैन

कलावती

पहला परिच्छेद

प्रथम सन्देश।

इस पृथ्वीके अलङ्कार-स्वरूप जम्बूद्वीप नामक सुविस्तृत भूमिमें भरत नामका क्षेत्र है, जिसको वैताढ्य-पर्वतने दो खण्डोंमें और गङ्गा तथा सिन्धु नदियोंके प्रवाहने छः खण्डोंमें विभक्त कर दिया है। इसके दक्खिनी हिस्सेमें भारतके मध्य-खण्डके भूषणके समान रमणीय नगरों, ग्रामों और प्रदेशोंसे संयुक्त मङ्गल नामका देश है, जिसमें दक्षिणावर्त्त शंखकी भाँति मनुष्यकी इच्छाओंको पूरा करने वाला, लक्ष्मीसे भरा-पूरा और हर जातिके लोगोंसे बसा हुआ शंखपुर नामका एक नगर है। इस नगरके ऊँचे राजमहल पर फहराती हुई पताका मानो डंकेकी चोट यही कहा करती है, कि बस

शंखपुरके समान तो दूसरा कोई नगर ही नहीं है। इसी नगरमें किसी ज़मानेमें शंखके समान उज्ज्वल यश-वाले शंख नामके राजा राज्य करते थे। वे वीर तो थे; पर प्रजापीड़क नहीं; चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कीर्त्ति वाले थे, परन्तु उनमें कहीं कलङ्ककी रेखा नहीं थी। वे सुपात्रोंको दान करनेमें उदार, जुआ आदि व्यसनोंमें खर्च करनेमें कृपण, पर-स्त्रीसे मुँह फेर लेने वाले और सदा शत्रुओंके संमुख डट जानेवाले थे। उनको घर-बाहर सभी जगह सुख था। इसी तरह सुखसे राज्य करते हुए उन्होंने वहुत दिन विता दिये।

एक दिन राज-महलमें वैठे हुए राजाके पास आकर प्रतीहारीने निवेदन किया, कि सेठ गजानन्दका पुत्र दत्त आया हुआ है और आपके दर्शन करना चाहता है। राजाके आज्ञानुसार उनके पास आकर दत्तने वड़ी अच्छी-अच्छी चीज़ें राजाको भेंट कीं और उनके पास ही एक आसन पर वैठ गया राजाने पूछा,—"क्यों कुमार! तुम्हारी तवियत तो अच्छी है घर पर सब सकुशल तो हैं? इस वार तो तुम वहुत दिनों पर यहाँ आये।" दत्तने कहा,—"आपके चरण-कमलोंकी कृपासे हमारे यहाँ सब प्रकारसे कुशल है। रही देरसे आनेकी वात, सो हम व्यापारियोंकी यह रीति है, कि जवानीमें देश-विदेश घूम कर द्रव्य उपार्जन करते चलते हैं; क्योंकि यह वड़े लोगोंका कहा हुआ है, कि भूखे मनुष्यका पेट व्याकरणकी फक्किकाओंसे नहीं भरता; प्यासे मनुष्यकी प्यास काव्य-रसका पान करनेसे

नहीं मिटती; छन्द-शास्त्रसे किसीके कुलका उद्धार नहीं होता; इस लिये द्रव्य उपार्जन करना चाहिये; क्योंकि इसके विना सारी कलाएँ वेकाम हो जाती हैं। अतएव मैं भी यहाँसे देवशालपुरकी तरफ़ चला गया था और वहाँसे ख़ूब धन कमाकर हालही लौट आया हूँ।" राजाने कहा,—"ओह! देवशालपुर तो यहाँसे वहुत दूर है। वहाँ पहुँचकर तुमने इस कथनको सच सावित कर दिया, कि—

> कोऽति भारः समर्थानां किंदूरं व्यवसायिनाम्।
> को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्॥

अर्थात्—समर्थ पुरुषके लिये भला कौनसी चीज़ भारी है? व्यवसायी पुरुषोंके लिये कौनसी जगह दूर है? विद्वानोंके लिये विदेश कौनसा है? जो मीठी वाणी वोलने वाला है उसके लिये पराया कौन है?

"अच्छा, अव तुमने इस सफ़रमें जो-जो आश्चर्यजनक वस्तुएँ देखी हैं, उनका हाल मुझे कह सुनाओ।"

दूतने कहा,—"राजन्! सुनिये। उस नगरमें अप्रतिम देवमन्दिर हैं। वहाँपर मुनीन्द्र लोग सपरिवार वास करते हैं और वहाँके श्रावक वड़ेही वुद्धिमान् हैं। सारा नगर मानो आश्चर्य-जनक वस्तुओंसे ही भरा हुआ है। लेकिन वहाँपर मैंने जो सवसे वढ़कर अद्भुत वस्तु देखी, उसे आप भी देख लें और अपनी आँख ठंढी करें।"

यह कह, उसने खूब यत्नके साथ छिपाकर रखा हुआ एक रङ्ग-बिरंगे वर्णोंसे युक्त चित्रपट निकालकर राजाके सामने रख दिया। वह चित्र एक परमा सुन्दरीका था, जिसकी सुन्दरताके सामने सुर-सुन्दरियाँ भी शर्मसे सिर झुका लेतीं। उसके वह रसीली आँखें, वह हँसता हुआ चेहरा, वह कमल-नालकी समान बाँहें, वह पद्म-पत्रके समान चरण, वह मनोहर अङ्ग प्रत्यङ्ग देखकर राजा मुग्ध हो गये और उन्होंने अपने मनमें उसे देवाङ्गना ही मानकर पूछा, "यह किस देवीकी मूर्त्ति है? किस चित्रकारने इसे अङ्कित किया है?"

दूतने कहा,—"महाराज! यह कोई देवी नहीं, मानवी ही है। हाँ, यदि आपके साथ इसका संयोग हो जाये, तो यह अवश्यही देवी बन जायगी। यह किसी चित्रकारका अङ्कित किया हुआ नहीं है; बल्कि मैंनेही जैसा कुछ देखा, वैसा अङ्कित कर लिया है।"

राजा,—"ओह! इसकी सुन्दरतामें तो कहींसे भी कोई कसर नहीं नज़र आती। पूर्ण चन्द्रमाकासा सुन्दर मुख-मण्डल है, भ्रमर-जालकेसे सुन्दर केश हैं, सुडौल भौंहोंके नीचे बड़ी-बड़ी आँखें हैं,होठोंपर सदा हँसी खेलती हुई मालूम पड़ती है। उँगलियाँ कैसी सुन्दर हैं! ओह! यह चित्र तो ठीक सजीव मालूम पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है, मानों यह मूर्ति अभी कुछ कहाही चाहती है। मैं तो इसे देखकर एकदम मोहित हो गया।"

दूत,—"महाराज! वह तो इससे भी कहीं सुन्दर है। मैंने

कलावती

रंग बिरंगे वर्णों से युक्त चित्रपट निकाल कर राजाके सामने रख दिया।

पृष्ठ ४

तो केवल अपनी स्मृतिके सहारे जैसा कुछ अङ्कित करते बना, अङ्कित कर लिया है।"

राजा,—"अच्छा, तो अब तुम कृपाकर यह बतला दो, कि यह कौन है ?"

दत्त,—"यह तो मेरी बहन है।"

राजा,—"फिर तुमने इसे देवशालपुरमें कैसे देखा ?"

दत्त,—"अच्छा, इसका हाल सुनिये। द्रव्यकी इच्छासे मैं बहुतसे साथियोंके साथ इधर-उधर देश-विदेशकी सैर करता हुआ फिर रहा था। एक समयकी बात है, कि मैं बहुतसे देशोंकी सैर करनेके बाद, जगह-जगह तरह-तरहके कौतुक देखता हुआ नन्दिदेशके देवशालपुरसे कुछ दूरपर एक भयङ्कर जङ्गलमें जा पहुँचा। वहाँ एक बड़ेही भड़कीले घोड़े पर सवार हो, हथियारबन्द सिपाहियोंसे घिरा हुआ मैं चोरों डाकुओं और जंगली कोल-भीलोंके डरसे मनही-मन डरता हुआ रास्ता खोजता हुआ चला जा रहा था, इतनेमें मैंने एक सुन्दर सुडौल अङ्गोंवाले पुरुषको पड़ा देखा। उसके पासही एक घोड़ा मरा पड़ा था। मैंने यह सोचकर, कि अभी इसमें कुछ जीवनका अंश शेष है, उसके ऊपर ठंढे जलके छींटे दिये। जब वह कुछ-कुछ होशमें आने लगा, तब मैंने उसे थोड़ा पानी पिलाया। जब वह अच्छी तरह होशमें आकर उठ बैठा, तब मैंने उसे भूखा हुआ जानकर उत्तमोत्तम मिठाइयाँ उसे खानेके लिये दीं। जब वह खा-पी चुका, तब मैंने उससे पूछा—भाई !

तुम कौन हो और इस विकट सङ्कटमें क्योंकर पड़ गये? यह सुनकर उसने कहा,—भाई! और क्या कहूँ? होनहारके वशमें पड़कर भले ग्रह भी बुरे वन जाते हैं। जैसे हवा पत्तेको उड़ाये लिये जाती है, वैसेही मनुष्यको विधि-विधान जिधर चाहता है, उधरही घुमाया करता है। मैं तो देवशालपुरसे आकर यहाँ इस दशाको प्राप्त हुआ। मेरा घोड़ा बिगड़ गया और वह वहक कर मुझे यहाँ तक ले आया। अब हे मेरे परोपकारी मित्र! तुम तो बतलाओ, कि कहाँ जा रहे हो?

'मैंने कहा,—मैं तो देवशालपुरकी ही तरफ़ जा रहा हूँ। चलो हम दोनों एक ही घोड़ेपर सवार हो चले चलें'।

"इसके बाद हम दोनों एक ही घोड़ेपर सवार हो सारा दिन उस जंगलको पार करते रहे। दूसरे दिन एक जगह घोड़ोंकी हिनहिनाहट, हाथियोंका चिंघाड़, रथोंकी गड़गड़ाहट और सिपाहियोंका शोर-गुल सुनकर हमारे साथके सिपाही डर गये और अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र सम्हालने लगे। इतनेमें एक आदमीने हमारे पास आकर कहा,—भाइयो! डरो मत—कृपाकर यह बतलाओ, कहीं तुमने ऐसा कोई आदमी देखा है, जिसे एक तेज़ दौड़नेवाला घोड़ा वहकाये लिये जाता हो? इतनेमें उस आदमीकी नज़र मेरी बग़लमें बैठे हुए आदमी पर पड़ी। देखते ही उसका चित्त प्रसन्न हो गया और उसके साथी भी उसी समय वहाँ पहुँच गये। वह आदमी, जो मेरे साथ घोड़े पर बैठा था, राजा विजयका पुत्र था। उसीकी खोजमें यह

सारे सिपाही और स्वयं राजा विजय चारों ओर घूम रहे थे। कुँअरको देखते ही सारी सेना कुमार जयसेनकी 'जय' कह उठी। उसी समय कुमार जयसेनने मेरे घोड़ेसे नीचे उतरकर अपने पिताके चरणोंपर गिरकर नमस्कार किया। पिताके पूछने पर उसने अपनी सारी कहानी सुनाते हुए कहा,—"पिताजी! यह दुष्ट घोड़ा मुझे उस विकट जंगलमें बहका ले गया। लाचार मैंने ऊबकर लगाम छोड़ दी। तब वह खड़ा हो गया और देखते-देखते गिरकर मर गया। उसी समय मुझे भी मूर्च्छा आ गयी। मैं इसी हालतमें पड़ा था, कि इन मेरे धर्म-बन्धुने आकर मेरी जान बचायी। यह कह कुमारने मेरी ओर उँगलीसे इशारा किया। यह सुनते ही राजा विजयने मुझे घोड़ेसे नीचे उतर कर गलेसे लगा लिया और मुझे अपने बड़े लड़केके समान माना। मेरे साथवालोंकी रक्षा करनेका भार अपने सिपाहियोंको देकर राजा विजय मुझे पहले देवशालपुरकी ओर ले गये। वहाँ मैं बहुत दिनोंतक रहा। वहाँ के लोगोंने मेरा मन ऐसा मोह लिया, कि मैं तो अपने माता-पिता और मातृ-भूमि की बात ही भूल गया। सच है, इस संसारमें ऐसे स्नेही हृदय बड़ी कठिनाईसे मिलते हैं, जो थोड़े दिन साथ रहनेसे भी मनको मुट्ठीमें कर लेते हैं। राजा विजयकी एक लड़की है, जो कुमार जयसेनसे छोटी है। वह बड़ी शुभलक्षणा है। उसका रूप तिलोत्तमाके समान, आँखें मनोहर और गुण अनेक हैं। वह सब कलाओंमें निपुण है। इसी लिये उसका कलावती नाम

सार्थक हो गया है, उसके योग्य वर नहीं मिलनेके कारण उसके माता-पिता बड़े ही चिन्तित हैं। सच ही कहा है, कि लड़कोंके जन्मके समय माताएँ विना आँसू गिराये नहीं रहतीं; क्योंकि लड़की जन्मभर चिन्ताका ही कारण होती है। सयानी लड़की हो जानेपर उसके व्याहकी चिन्तासे माताके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ती रहती हैं; फिर व्याह हो जानेपर जब वह पराये घर चली जाती है, तब उसके वियोगसे छटपटाया करती है और यदि कदाचित् वह पतिकी प्यारी नहीं हुई या उसकी गोद भरी-पूरी न हुई, तो जन्म-भरके लिये उसके माँ-बापको दुःख हो जाता है।

"एक दिन राजाने मुझसे कहा,—पुत्र दत्त! तुम्हीं अपनी इस बहनके लिये कोई अच्छासा वर खोज लाओ; क्योंकि तुम बहुतसे देशोंकी सैर कर आये हो, इस लिये तुमने कितनेही अच्छे-अच्छे मनुष्य देखे होंगे; क्योंकि यह वसुन्धरा रत्नमयी है—इसमें एक-से-एक बढ़ कर उत्तम-उत्तम पुरुष-रत्न पड़े हुए हैं। आशा है, कि तुम मेरा यह काम अवश्य ही कर लाओगे।

"राजाकी आज्ञा अङ्गीकार कर मैं घूमता-फिरता हुआ यहाँ आ पहुँचा हूँ; क्योंकि जहाँ तक मैंने सोचा, वह क़न्या आपके ही योग्य मालूम पड़ती है। साथ ही इसके मुझे यह भी ख़याल होता है, कि अपने मालिकको छोड़ कर रत्नके समान सुन्दरी कन्या दूसरे किसीको क्यों दिलवायी जाये? इसीसे मैंने

आपको यह कथा सुनायी है। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें।"

यह कह, दत्त चुप हो गया। तब मन-ही-मन उस राजकुमारीके रूपपर मुग्ध होते हुए राजासे बुद्धिधन नामक मन्त्रीने कहा,—"हे राजन्! यह स्त्री कलङ्क-हीन चन्द्रमाके समान मुखवाली, खिले कमलकीसी आँखोंवाली, लाल-लाल अशोकके पत्तेके समान हाथोंवाली और लावण्य-रूपी उमड़ी हुई नदी है। यह रत्न तो देवताके उपभोग करने योग्य है। हँसिनी सिवा हंसके किसी कागके पास थोड़े ही जाती है?"

उसके चुप होते ही मतिसागर नामक दूसरे मन्त्रीने कहा,—"वाह भाई दत्त! तुम तो हम लोगोंसे भी बाज़ी मार ले गये; क्योंकि हम तो यहाँ रह कर स्वामीकी सेवा करते हैं और तुम परदेशमें जाकर इनका काम कर आये।"

सुबुद्धि नामक तीसरे मन्त्रीने कहा,—"जो दूसरेका स्वार्थ नष्ट कर अपना स्वार्थ साधन करता है, वह अधम पुरुष है, जो अपना भी काम बनाता तथा दूसरेका भी बना लाता है, वह मध्यम है; परन्तु जो केवल परार्थ-साधन करना ही अपना कर्त्तव्य समझता है, वह तो उत्तम पुरुष है।"

सुमति नामक चौथे मन्त्रीने कहा,—"जो परार्थ साधन करनेका आरम्भ करता है, वह तो धन्य है ही; परन्तु जो आरम्भ करके उसे अन्त तक पहुँचा देता है, वह विशेष धन्यवादके योग्य है; क्योंकि यह नीतिका वचन है, कि अधम पुरुष

विघ्न आनेके भयसे किसी कामको आरम्भ ही नहीं करते ; मध्यम पुरुष आरम्भ तो करते हैं ; पर विघ्न आनेपर बीचमें ही छोड़ बैठते हैं और उत्तम पुरुष तो बार-बार विघ्न-बाधाओंकी ठोकरें खाकर भी अपने आरम्भ किये हुए कामको नहीं छोड़ते ।"

मन्त्रियोंकी बातें सुन, दत्तने मुस्कराते हुए कहा,—"वाह ! यह तो आप लोगोंने वही मसल पूरी की, कि जो रोगीको भावे, वही वैद्य बतलावे ।"

इसी तरहकी मीठी-मोठी बातें करते-करते दिनके दो पहर बीत गये । कालकी सूचना देनेवालोंने ऊँचे स्वरसे समयकी सूचना दी । उसे सुनकर राजाने सभा विसर्जनकी और स्नानादि करके जिन-पूजा करने चले गये ।
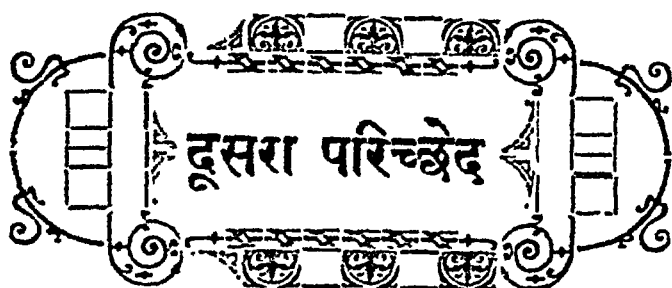
कलावतीका विवाह।

पूजा-पाठसे निवृत्त हो, राजा शय्यापर पड़े-पड़े सोचने लगे,—"धन्य है विधाताको, जिसने ऐसी देवाङ्गनाओंको लज्जित करनेवाली सुन्दरी बनायी ; पर यदि इस समय वह मुझे पंख दे दे, तो क्याही अच्छा हो ! फिर तो मैं झटपट उड़कर उसके पास पहुँच जाऊँ और उसके चाँद-से मुखड़ेका दर्शन करूँ। अहा, न मालूम वह दिन कैसा प्यारा होगा, जिस दिन मैं उस सुनयनाको प्राप्त करूँगा।"

इसी तरह बड़ी देरतक चिन्ताकी तरङ्गोंमें बहते रहनेके बाद वे फिर दरबारमें चले आये। राजकर्मचारियों, मन्त्रियों और सेवकोंने तरह-तरहकी मीठी-मीठी बातें सुनाकर उनका चित्त प्रसन्न कर दिया। वे हँसते हुए सबका यथायोग्य उत्तर देने लगे। सारा दिन इसी तरह बीत गया। क्रमसे सन्ध्या और सन्ध्याके बाद रात्रि हुई। सब लोग अपने-अपने घर चले गये। राजा भी खा-पीकर सोने चले गये।

दूसरे दिन सवेरे राजा अपने मन्त्रियों और सामन्तोंसे घिरे हुए बैठे थे। इसी समय किसीने दौड़ते हुए उनके पास पहुँच कर कहा,—"महाराज! सीमा-प्रान्तके सामन्तोंने नम्रता-पूर्वक कहला भेजा है, कि रथ, अश्व, हाथी और पैदल सेनाओंसे सजी हुई कोई बहुत बड़ी सेना आपके नगरकी ओर चली आ रही है। उसके कोलाहलके मारे जंगलके रहनेवाले पशु भी घबरा उठे हैं।"

यह सुनते ही क्रोधके मारे राजाकी भौंहें तन गयीं। उनका हाथ एकाएक मूँछोंपर चला गया और वे बड़ी वीरताके साथ उमङ्गमें आकर बोले,—"भाइयो! सुनो—अब चुप बैठनेका समय नहीं रहा। अभी मारू बाजे बजाओ और सेना सजाओ। सामन्तो और सेनापतियो! तुम लोग अब रण-खेल मचानेके लिये शीघ्रातिशीघ्र तैयार हो जाओ।"

राजाका यह हुक्म पा, सभी वीर सैनिक, सामन्त और सेनापति आदि अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होने लगे। सारे नगरमें रथों, अश्वों और हाथियोंकी आवाज़से कोलाहल मच गया। कहीं कोई घोड़ेपर साज़ कस रहा है, कोई रथमें घोड़े जोत रहा है, कोई अपने हथियारपर लगा हुआ ज़ंग दूर कर रहा है, कोई अपनी सिपाहियाना पोशाक पहन रहा है।

इसी तरहकी स्थिति सारे नगरकी हो रही, सभीको युद्धकी ही सूझ रही थी। इसी समय दूतने राजाके पास आकर कहा,—"हे महाराज! यह असमयमें ही कैसी तैयारी हो रही है? अजी सरकार! जिस कन्या-रत्नका चित्र देखकर

आपका हृदय मोहित हो गया है, वही स्वयंवरा होकर आ रही है। उसीके साथ-साथ सकल-कला-निपुण, परम वीर और ज्ञानी कुमार जयसेन अपनी सेना साथ लिये चले आ रहे हैं।"

यह सुनते ही राजा परम आनन्दित हुए और बोले,—"दत्त! यह सब तुम्हारी माया है।"

दत्तने कहा,—"नहीं स्वामी! यह सब दैव की माया है।"

इसी समय मतिसागर नामक मन्त्रीने कहा,—"राजन्! दत्त बड़ा ही अनुभवी और महानुभाव है। यह काम बनानेमें चतुर और बातें बनानेमें कृपण है। कहा भी है, कि जो बादल बरसते हैं, वे कम गरजते हैं और जो बरसनेवाले नहीं होते, उनकी गरज-टनक कानोंके परदे फाड़ डालती है। काँसेका बर्त्तन झनझनाया करता है; पर सोनेका पात्र नहीं खनखनाता। प्रायः जिसके भीतर कुछ भी सार नहीं होता, उसका आडम्बर बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है। अपने स्वामीके मुँहपर चिकनी-चुपड़ी ठकुर-सुहाती बातें कहनेवाला सेवक अधम है; पर जो पीठ पीछे स्वामीकी बड़ाई करता और उनका कार्य-साधन करता है, वही उत्तम सेवक माना जाता है। दत्त अपनी गम्भीरताके कारण कुछ बोलता नहीं है, तथापि मैं तो यही समझता हूँ, कि इसने आपकी प्रशंसा करके उस कन्याके मनमें आपके प्रति प्रीति उत्पन्न कर दी है। इसी लिये वह कन्या अपने भाई के साथ-साथ यहाँ आ रही है। उधर उसे रवानः करके ही यह आपको ख़बर देनेके लिये पहले चला अया है।"

दत्त,—"मन्त्री महाशय! आप बड़े ही बुद्धिमान् हैं। इसीसे आप जैसा देखते हैं, वैसा ही अनुमान करते हैं।"

राजा,—"दत्त! तुम गम्भीर स्वभाव वाले हो और मतिसागर मन्त्री बुद्धिमान् है। अब तुम्हें जैसा इस समयके उपयुक्त मालूम पड़े, वैसा कार्य करो। यह सैन्य-सामग्री तो तुम अभी यहाँसे हटाओ। हाट-बाजार, गली-कूचेमें तोरण बनवाओ, फूल-पत्ते सजाओ और बुद्धिधन मन्त्रीको कुमार जयसेनके पास उनकी अगवानी करनेके लिये भेज दो। उनके साथ आये हुए लोगोंके ठहराने और उनके हाथी-घोड़ोंके चारेका प्रबन्ध करो।"

राजाके आज्ञानुसार उनके मन्त्रियोंने राजकुमार जयसेन और उनके साथ आये हुए लोगोंकी ऐसी ख़ातिरदारी की, कि सबके सब बड़े ख़ुश हुए और शंख राजाकी सौ–सौ मुँहसे बड़ाई करने लगे। राजकुमार जयसेन राज-महलके एक बड़े ही सजे-सजाये कमरेमें ठहराये गये। वहीं खाने-पीने और नाच गानका आनन्द देखनेमें सारा दिन और सारी रात बीत गयी। दूसरे दिन मन्त्री और सामन्तोंके साथ राजकुमार दरबारमें आये। वहाँ पहुँच, राजा शंखके चरणोंमें नमस्कार कर, उन्होंने कितनी ही चीज़े उनकी भेंट कीं। राजाने उन्हें स्नेहसे गले लगाते हुए कुमारको ऊँचे आसनपर बैठाया।

इसके बाद कुमारके बुद्धिमान् मन्त्रीने राजाके संमुख खड़े होकर कहा,—"महाराज! आपके उज्ज्वल गुणोंका बखान

सुनकर हमारे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसने आपके चरित्रका जैसा वर्णन किया, उससे दूर रहते हुए भी हम लोगोंने आपके दर्शन कर लिये और आप पर हमारा पूरा-पूरा अनुराग हो गया। अधिक क्या कहूँ ? उनका आपपर ऐसा प्रेम हो गया है, कि उन्होंने अपनी कन्याको आपके पास भेज दिया है। बहुतेरे राजाओंने राज-कुमारीके साथ ब्याह करनेकी इच्छा प्रकट की ; परन्तु उन्होंने इन्हें आपकोही सौंपना उचित समझा। ये भी आपही पर प्रेम करती हैं। अब आप इन्हें ग्रहण करें और इनको ऐसी ख़ातिर के साथ अपने यहाँ रखें, कि ये अपने मायके सुख भूल जायें।"

यह सुन,शंखके समान मधुर ध्वनिवाले राजा शंखने कहा,—"इतनी दूरपर रहते हुए भी मुझ गुणहीन और अल्प अवस्थावाले पुरुषपर विजय राजाका ऐसा स्नेह हो जाना, उनके बड़प्पनकी ही निशानी है। कहा है, कि:—

मनसि वचसि काये पुण्य—पीयूष-पूर्णा-
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभीः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्त; सन्ति सन्तः कियन्तः ॥'

अर्थात्—'तन,मन और वचनमें पुण्यरूपी अमृत भरे हुए तीनों लोकको अपने उपकारोंके बोझसे प्रसन्न करनेवाले तथा दूसरेके छोटे-छोटे गुणोंको भी पर्वतके समान समझकर नित्य अपने हृदयमें प्रफुल्लित होनेवाले सन्त दुनियाँमें कोई-ही-कोई हैं।

"इस लिये मैं भी अपने ऊपर सच्चा स्नेह रखनेवाले उन राजाकी बात अवश्य ही मानूँगा। कुलीना, सुन्दरी और कल्प-वृक्षकी भाँति फलदायिनी कन्याको स्वीकार करनेमें कौन बुद्धि-मान् पुरुष विलम्ब करेगा?"

इसी समय उस राजदरबारमें बैठे हुए दत्तकी ओर देख, मुस्कराते हुए राजकुमार जयसेनने कहा,—"हे बन्धो! आज मुझे तुम्हारी बातोंका पूरा-पूरा विश्वास हो गया। तुमने जैसा कुछ इन नृपतिवरका वर्णन किया था, वैसा ही पाकर और इनकी मीठी-मीठी बातें सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। इन-को देखकर मेरी आँखें निहाल हो गयीं। इनकी वाणी श्रवण कर मेरे कान पवित्र हो गये।"

इसी प्रकार प्रेम-भरी बातें कर, विवाहका दिन स्थिर कर, सब लोग अपने डेरेपर चले गये। इसी तरह निरन्तर प्रेम-भरी बातें करते और सुखसे रहते हुए उन लोगोंने कितनेही दिन बिता दिये। धीरे-धीरे विवाहका दिन आ पहुँचा। बड़ी धूमधामसे राजा शंखके साथ राजकुमारी कलावतीका विवाह हो गया। कंगन छूटनेके दिन राजकुमार जयसेनने अपने पिताके कहे अनु-सार बहुतसे हाथी, घोड़े, रथ, गहने और कपड़े दहेज़में दिये।

थोड़े दिन बाद कुमार जयसेन शंख राजाकी आज्ञा ले, कलावतीको समझा-बुझाकर सेना सहित देवशालपुरकी ओर चले गये।

तीसरा परिच्छेद

कलावतीका परित्याग।

विवाहके बाद राजा शंख कलावतीके साथ रहते हुए संसारके समस्त सुखोंका उपभोग करनेमें ऐसे मग्न हो गये, कि उन्हें एक घड़ी भी कलावतीके विना चैन नहीं पड़ने लगा। उसके विना राजाको घर-द्वार सूना मालूम पड़ता, सरस भोजन भी नीरस मालूम पड़ता, कोमल शय्या भी काटने दौड़ती। वे तनसे चाहे सौ काम करें ; पर उनका मन सदैव कलावतीके ही पीछे-पीछे फिरा करता था। राजाकी यह निराली प्रीति देखकर सभी स्त्रियाँ कलावतीके भाग्यकी प्रशंसा करने लगीं।

इधर लड़कपनसे ही सदाचारिणी होनेके कारण कलावती भी न तो कभी झूठी बात मुँहसे निकालती, न किसीकी निन्दा करती, न किसीसे ईर्ष्या-द्वेष या लड़ाई-झगड़ा करती। वह सदा सबके साथ मीठी-मीठी बातें करती, थोड़ी और विनय-भरी बातें ही मुँहसे निकालती, सदा दूसरोंकी भलाई किया

करती और दिन—दिन अपने सदाचारकी वृद्धि करती जाती थी। अन्यान्य मूर्ख स्त्रियोंकी भाँति वह अपनी सौतोंके साथ भी कभी झगड़ा नहीं करती थी। उल्टा सबको आनन्द ही प्रदान किया करती थी।

एक दिन सुख सेजपर सोयी हुई कलावतीने रात्रिके पिछले पहर कुसुमा—मालासे अर्चित, खिलेकमलोंसे अच्छादित और क्षीर-समुद्रके जलसे भरा हुआ सुवर्ण-कलश सपनेमें देखा। जब सवेरे बाजोंकी मधुर तानें उसकी कानोंमें पड़ीं, तब उसकी नींद खली और वह बड़े आनन्दसे हँसती हुई अपने पतिके पास आकर उन्हें सारा हाल सुनाने लगी।

राजाने सारा हाल सुनकर कहा,—“प्यारी! ‘तुम्हें अपूर्व राज्यश्रीका भोग करनेवाला पुत्र होगा।” यह सुन, कलावती बहुत प्रसन्न हुई।

कहना नहीं होगा, कि उस समय रानी कलावती गर्भवती थी। अपने पतिकी बातें मन-ही-मन सोचती हुई वह गर्भके दिन बड़े सुखसे बिताने लगीं। अधिक ठंढ़ी या गरम चीजें न खाना, भूख—प्यासको बहुत देर तक न रोके रहना, गर्भ-पोषक औषधियाँ खाना, गर्भकी पुष्टिके लिये देवताकी सेवा करना, आदि गर्भवतियोंके करने योग्य काम वह करने लगी।

क्रमसे यह समाचार देवशालपुर पहुँचा। सुनकर कलावतीके पिताने उसे बुलानेके लिये आदमी भेजे; क्योंकि यह उनके यहाँकी रीति चली आती थी, कि, लड़कीको पहले-पहल

अपने पीहरमें ही लड़का जनना चाहिये। वे लोग दत्त श्रेष्ठीके ही घर पर उतरे। कर्म-संयोगसे उनके साथ कलावतीकी मुलाक़ात हो गयी। उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने माता-पिता, भाई और सारे राज्यकी कुशल पूछी। उन लोगोंने सब कुशल-समाचार सुने और भेंटके लिये लायी हुई सामग्रियाँ उसे दे दीं। इसके बाद उन लोगोंने दो कड़े और और दो वस्त्र निकाल कर दिखलाते हुए कहा,—"कुमार जयसेनने ये चीज़ें राजाको देनेके लिये कहा है।"

"लाओ, मुझे दे दो, मैं ही उन्हें दे दूँगी।" यह कहकर कलावतीने वे सब चीज़ें अपने हाथमें ले ली और उन आदमियोंका सादर सत्कार कर अपने महलमें चली आयी।

अपने महलोंमें आकर कलावतीने वे कड़े अपने हाथमें पहन लिये और हँसती हुई अपनी सखीसे बोली,—"प्यारी सखी! इन्हें देखकर तो मेरी आँखें निहाल हो गयीं। मैं इन्हें देखती हूँ तो मालूम होता है। मानों ये भी मुझे देख रहे हैं। इनको पहननेसे मुझे ऐसा मालूम होता है, मानों ये प्रेम सहित मेरा आलिङ्गन कर रहे हैं।"

सखीने कहा,—"स्वामिनी! आपका इनपर स्नेह हो गया है, इसी लिये ऐसा मालूम होता है।"

इसी समय कलावतीके महलोंकी ओर आते हुए राजाने रानी और उसकी सखीको हँस-हँसकर बातें करते सुना। पर यद्यपि वे कड़ोंके विषयमें बातें कर रही थीं, तथापि एक बार

भी कड़ोंका ज़िक्र नहीं आया, इसीलिये उनकी बातें सुनकर राजाके मनमें बड़ी शङ्का उत्पन्न हुई। शङ्काके बाद क्रोध भी पैदा हो आया और वे मन-ही-मन सोचने लगे।

"मालूम होता है, किसी अन्य पुरुषकी चर्चा हो रही है, इसी लिये इतनी हँसी हो रही है। ओह! इसने आज तक मुझे उल्लू ही बनाकर रखा। क्या करूँ? क्या इसके प्यारेको मार डालूँ या स्वयं अपना गला आप काट लूँ? न मालूम किस पापिन कुटनीने यह मेल मिलाया!"

यही सोचकर क्रोधसे काँपते हुए राजा वहाँसे लौट पड़े और अपने कमरेमें चले आये। दिन बीतने पर जब सूर्य अस्ताचलको चले गये तब उन्होंने शौकरिकको स्त्रीको गुप्त रीतिसे बुलाकर अपनी कल्पनाके अनुसार हुक्म दिया। उसके जानेके बाद उन्होंने एक निष्करुण नामके सिपाहीको बुलाकर बड़े सवेरे रानीको दूरके किसी जङ्गलमें छोड़ आनेका हुक्म दिया।

प्रातः काल रथोंमें घोड़े जोते हुए वह सिपाही रानी कलावतीके पास आया और बोला,—"महारानी! राजा वनमें क्रीड़ा करने जा रहे हैं, वे आपको साथ चलनेके लिये कह रहे हैं। इस लिये आप शीघ्र रथपर सवार हूजिये।"

यह सुनते ही पतिको आज्ञाकारिणी कलावती झटपट रथपर सवार हो गयी और रथ हवासे बातें करता हुआ चल पड़ा। जब रथ कुछ दूर निकल गया, तब रानीने पूछा,—"क्यों भाई! मेरे स्वामी कहाँ है?"

उस सिपाहीने कहा,—"अभी थोड़ी दूर पर हैं।"

इसी प्रकार सारी रात रथ चलता रहा। जब सूर्योदय हुआ, दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं, तब रानीने चारों ओर देखकर देखा,—"यहाँ तो कहीं भी मेरे स्वामी नहीं दिखाई देते, न कोई बाग़-बगीचा नज़र आता है। कहीं कोई नौकर—चाकर भी नहीं दिखाई देता। क्या यह कोई जङ्गल है! यह तो बड़ा इन्द्रजाल नज़र आता है। न मालूम मुझे मतिभ्रम हो गया है या दिग्भ्रम हो गया है। क्यों भाई! तुम मुझे क्यों धोखा दे रहे हो? सच कहो, तुम मुझे कहाँ लिये जा रहे हो? मैं बिना प्राणनाथके क्यों कर रह सकती हूँ?"

रानी कलावतीके इन व्याकुलता—भरे वचनोंको सुनकर निष्करुणके हृदयमें भी करुणा उत्पन्न हो आयी। उसने रथके नीचे उतरकर गद्गद् स्वरसे कहा,—"हे दैव! तुझे धिक्कार है। देवी! मैं बड़ा पापी हूँ। मेरा निष्करुण नाम आज सत्य हो गया। क्यों कि दैवने ही संयोगसे मुझे इस कार्यमें नियुक्त किया है। हे देवि! आज मैं समझ गया, कि जो नौकरी करके पेट पालता है, उसका जन्म भी व्यर्थ ही है। नौकरी करनेवाला अपने पेटके लिये बापसे लड़ता है, भाईको मारता है, और कितने ही न करने योग्य काम करता है। स्वामीकी ठकुरसुहाती बातें करने वाला आदमी कुत्तेके समान है। देवी! आज यदि मैं दूसरेका दास न होता, तो ऐसा कुकर्म कर-नेको कभी तैयार नहीं होता। आप रथसे नीचे उतर कर

इसी साल वृक्षके नीचे बैठें। अधिक क्या कहूँ! राजाकी तो यही आज्ञा है।"

उसकी यह बात सुन, तत्त्वको जाननेवाली कलावती रथसे नीचे उतरी और उसी वृक्षके नीचे बैठ कर रोने लगी। वह सिपाही भी रोता और आँसू पोंछता हुआ अपना रथ लिये हुए नगरकी ओर चल पड़ा। उसके जाते ही रानी कलावती रोती रोती एक बारगी बेसुध हो गयी।

उसके होशमें आकर उठते ही राजाकी भेजी हुई क्रोधसे भयङ्कर दीख पड़ती हुई एक चाण्डालिनी, हाथमें राक्षसियों-कीसी जलती मशाल लिये हुई, आयी और डपट—कर बोली—"अरी पापिन! तू छल करके राजाकी सम्पत्तिका भोग करना चाहती थी? क्या तुझे नहीं मालूम, कि राजाको भी तेरे चाल चलनका पता चल गया और वे तेरे प्रतिकूल हो गये। जो तुझपर इतना प्रेम रखते थे, उनके साथ छल करके तू दूसरेके साथ यारी करने गयी, इसका मज़ा मैं तुझे अभी चखा-ती हूँ।" यह कह, उस राक्षसीने उसी समय उस बेचारीके गहने समेत दोनों हाथ काट डाले।

घोर दुःखसे "हाय मैया! हाय मैया! कह—कह कर चिल्लाती हुई कलावती फिर बेहोश हो गयी। घंटों ठंडी हवा की लहरें शरीरमें लगनेके बाद उसकी बेहोशी दूर हुई और वह यह कह-कह कर विलाप करने लगी,—"हायरे दैव! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था, जो तू यों मुझपर रूठ गया। मैंने को-

"हायरे दैव ! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था । जो तू यों मुझ पर रूठ गया । मैंने कौनसा ऐसा पाप किया, जिसका मुझे यों फल भोगना पड़ा ?

पृष्ठ २३

नसा ऐसा पाप किया, जिसका मुझे यों फल भोगना पड़ा ? हे आर्य—पुत्र ! तुमने आज यह कैसी कठोरता कर डाली ! क्यों कर एकाएक तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति शङ्का उत्पन्न हो आयी ? न मालूम किस चुग़लखोरने मेरी ओरसे तुम्हारे पास चुग़ली खायी, जिससे तुम्हारा मन मुझसे ऐसा फिर गया ? स्वामी ! तुम सपनेमें भी न सोचना, कि मैं किसी तरह कभी अपने धर्ममें बट्टा लगने दूँगी । मेरी जान भले ही चली जाये, मेरा सर्वस्व ही क्यों न लूट जाये, पर मैं अपने पतिव्रतको अवश्य ही अचल रखूँगी । न मालूम तुम्हारा वह प्रेम, वह आदर, वह यत्न—एकाएक—बातकी-बातमें क्यों कर जाता रहा ? हाय ? आज मैं मरी जा रही हूँ और मेरे बाप, भाई, मा, या स्वामी-कोई भी मेरी रक्षा करनेके लिये हाथ आगे नहीं बढ़ाता । अब मैं कैसे क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे अपना दुखड़ा सुनाऊँ ? कौन मेरी बात सुनेगा ? ओह ! अब तो यह दर्द, यह जलन, यह बेचैनी बिलकुल बेबर्दास्त हो रही है ।"

वह इसी तरह रो—रोकर विलाप कर रही थी, कि इसी समय उसके पेटमें दर्द हुआ । उसने सोचा, कि कहीं प्रसव-कालकी पीड़ा तो नहीं है ? यही सोचकर वह किसी-किसी तरह बड़े कष्टसे पासवाली नदीके तीर पर उगे हुए जङ्गली पेड़ोंके झुरमुटके भीतर चली गयी । वहीं बड़े कष्टसे उसने एक देव कुमारोंका सा सुन्दर बालक जना ।

———

निर्दयता और दयालुता ।

अहा ! कर्मकी भी कैसी विचित्र गति है । जिसके मुँहसे वात निकलते-न-निकलते ही हज़ारों दास और दासियाँ हाथ जोड़े उसके सामने आ खड़ी होतीं, जिसके बच्चा होते समय सैकड़ों दाइयाँ आपसे -आप आ पहुँचतीं, जो सदा राजमहलोंमें मुलायम सेजपर सोयी रहती थी, उसीको इस जंगलमें झाड़के अन्दर बच्चा जनना पड़ा ! इसे हम कर्मोंका फेर न कहें, तो और क्या कहें ? यह कर्म तो अनहोनीको होनी कर देता है और जहाँ पहुँचनेका कोई सपना भी नहीं देखता, वहीं ला पटकता है ।

अस्तु ; बेचारी कलावतीने अपने लूले हाथोंसे ही उस हालके पैदा हुए बच्चेको गोदमें उठाकर कहा,—"मेरे लाल ! तेरी बड़ी उमर हो । तू सुखी हो, जिससे तेरी इस लूली और दुखियारी माँका भी भला हो । और क्या कहूँ !" यह कहती

"हे नदी माता ! मैं दुखिया इस समय आपकी ही शरण में हूँ। कृपाकर मेरे लड़के को मत छीनो। पृष्ठ २५

हुई वह रो पड़ी, आँखोंमें आँसू भर आये, देह अलसा गयी, और फिर मूर्च्छा सी आने लगी।

हाय! जिस बालकके पैदा होते ही घरमें आनन्दके बादल उमड़ आते हैं, तरह—तरहके बाजे बज उठते हैं, हर जगहसे बधाइयाँ आने लगती हैं, सैकड़ों दिलोंमें एक ही साथ उमङ्ग भर आती है, उसी बालको आज कोई ज़मीनसे उठाकर गोदमें ले लेनेवाला नहीं है, यह देखकर भला किस माताकी छाती नहीं फट जायगी? किस मनुष्यका हृदय इस विकट दृश्यको देखकर दहल न उठेगा।

थोड़ी देर बाद जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब उसने देखा, कि उसका वह बालक आपही—आप खेलता हुआ एकदम नदीके किनारे पहुँच गया है। यह देख, बड़ी मुश्किलोंसे उसे पैरोंके बल पकड़कर रोकते हुए कलावतीने कहा,—"हे नदी—माता! मैं दुखिया इस समय आपकी ही शरणमें हूँ, कृपाकर मेरे लड़केको मत छीनो। हे देवी! हे ज्ञान-लोचने! यदि मैंने आजतक कभी क्षणभरके लिये भी अपना शील भङ्ग न होने दिया हो, तो तुम्हीं मेरे इस बालककी रक्षा करो।"

इस प्रकार जब कलावतीने रोते-रोते दीन—वचन कहे, तब उसके सतीत्वसे प्रसन्न होकर नदीकी अधिष्ठात्री देवी तत्काल प्रकट हो गयीं और उसके हाथ पूर्ववत् बना कर फिर अन्तर्धान हो गयीं।

इस अद्भुत लीलाको देखकर कलावतीका रोम—रोम मानों

अमृतसे भर गया। वह दोनों हाथोंसे लड़केको गोदमें उठा कर देवीकी स्तुति करने लगी।

इसके बाद वह बालककी ओर देखती हुई बोली,—"हाय! आज यदि मैं राजमहलमें होती, तो इस पुत्रकी बधाईमें कितनी खुशियाँ मनायी जातीं! पर विधिका विधान बड़ा ही विचित्र है। यदि ऐसा न होता, तो मैं इस हालतको क्यों कर पहुँचती? परन्तु इसमें विधिका ही क्या अपराध है? यह सब मेरे कर्मोंके दोष हैं। यदि पूर्व जन्ममें मैंने सती-धर्मका पूरा-पूरा पालन किया होता, तो इस भवमें मुझे इतना दुःख क्योंकर उठाना पड़ता?"

इसी प्रकार तरह-तरकी बातें सोचती और कह—कह कर रोती हुई वह जङ्गलके पशुओंको भी रुलाने लगी;

इसी समय उस रास्तेसे एक तपस्वी आ निकले। उनकी दृष्टि एकाएक कलावतीपर जा पड़ी। उसे देखकर तपस्वीने सोचा,—"ऐं! यह कौन है? क्या कोई स्वर्गकी देवी है? या विद्याधरी है? कहीं वनकी देवी तो नहीं है? या कोई किन्नरी आ बैठी है? अथवा पाताल-लोकसे कोई नाग-कन्या आ पहुँची है? कहीं किसी राजाकी रानी तो नहीं है?"

यही सब सोच-विचार करता हुआ वह तपस्वी उसके पास आ पहुँचा और उसका सारा हाल पूछ, उसकी हालत पर तरस खाकर उसे अपने तपोवनमें अपने कुलपतिके पास ले आया। कुलपतिके पास पहुँचते ही कलावतीने उन्हें प्रणाम

किया ; पर ज्यों ही उन्होंने उससे कुशल-समाचार पूछा, त्यों ही उसका हृदय भर आया और वह रोने लगी। उसे इस प्रकार रोते देख और यह सोचकर, कि यह कोई बड़ी दुखियारी स्त्री है, कुलपतिने मधुर वचनोंसे उसे ढाँढ़स देते हुए कहा,—"बेटी! सुख और दुःख ये पाप और पुण्य-रूपी वृक्षोंके फल हैं। इन्हें तो मनुष्य अपने—आप उत्पन्न करता है। इस लिये सत्पुरुषोंको इसके लिये खेद नहीं करना चाहिये। तेरे लक्षणयुक्त शरीर, गम्भीर वाणी और सुन्दर नेत्र आदिको देखकर तो यही मालूम होता है, कि तू किसी कुलीनके घरकी स्त्री है। तेरा भला हो। तू यहीं तपस्वियोंके साथ आश्रममें रह और धीरज धरे हुई इस बालकको पोस-पाल कर बड़ा कर। यदि भाग्यने गवाही दी, तो किसी दिन तेरे ये दुःख दूर हो ही जयेंगे।"

कुलपतिकी इन मीठी—मिठी बातोंसे कलावतीको बड़ा ढाँढ़स हुआ और वह उनकी बात मान कर वहीं रहने लगी।

पाँचवाँ परिच्छेद

पद्मराजाकी कथा ।

इधर उस चाण्डालिनीने रानी कलावतीके कड़े समेत कटे हुए हाथ लाकर राजाके सामने रख दिये। उन कड़ों पर कुमार जयसेनका नाम खुदा हुआ देखकर राजाको बड़ा खेद और शङ्का हुई। अबतो उन्हें उस शङ्काको दूर करनेकी धुन सवार हुई। इसी लिये उन्होंने गज श्रेष्ठीको बुलाकर पूछा,—"क्यों भाई! हालमें कोई देवशालपुरसे यहाँ आया है या नहीं?"

उसने कहा,—"महाराज! रानी साहबको बुलानेके लिये उनके पिताके यहाँसे कुछ आदमी आये हैं और मेरेही घरपर ठहरे हैं। हाँ, अभी दुर्भाग्य वश वे लोग आपसे नहीं मिल सके हैं।"

यह सुनकर तो राजाकी चिन्ता और भी बढ़ गयी। उन्होंने कलावतीके पीहर वालोंको बुलाकर पूछा,—"क्यों भाई! क्या तुम्हीं लोग सुन्दर मणियोंसे जड़े हुए सुन्दर कड़े ले आये हो?"

उन्होंने कहा,—"महाराज! वे कड़े कुमार जयसेनने आपकी

नज़र करनेके लिये हमें दिये थे; परन्तु हम आपके पास तो नहीं पहुँच सके, इस लिये महारानीकोही दे दिये, कि वे आपको दे देंगी।"

उनकी यह बात सुनते ही राजा बेहोश होकर सिंहासन पर गिर पड़े। उन्हें यो बेहोश होकर गिरते देख मन्त्री आदि सभी दरबारी घबरा उठे और उन्हें होशमें लानेकी विविध प्रकारसे चेष्टा करने लगे। जब राजाकी बेहोशी दूर हुई, तब उन्होंने सोचा,—"ओह, मैं कैसा नासमझ, नादान हूँ! कैसा अभागा हूँ! मुझसा निर्दय कोई नहीं हो सकता। मेरा कर्म चाण्डालों कासा है। मुझे भला स्त्री और मित्रकी क्या पहचान है?" यही सोचते-सोचते वे फिर मूर्च्छित हो गये। मन्त्री आदि उन्हें फिर होशमें ले आये और उनके होशमें आनेपर पूछने लगे,—"महाराज? आपको कौन ऐसी चिन्ता सता रही है, जो आप इस तरह बार-बार बेहोश हो रहे हैं? इसका कोई न कोई प्रबल कारण तो अवश्य ही है।"

राजाने कहा,—"प्यारे मन्त्रियों! पहले मैं नामकाही शंख था; पर आज मेरा वह नाम सार्थक हो गया। मैं देखता हूँ, कि मैं बाहरसे बड़ा मिठबोला होते हुए भी भीतरका निपट कठोर हूँ। मैंने राजा विजयकी कृपा, कुमार जयसेनकी मैत्री, रानी कलावतीके प्रेम और अपने कुलकी निर्मलतामें कालिख पोत दिया। मैंने अपनी सन्तानका गला आपही घोंट डाला। हाय! मैंने अपनी आसन्न-प्रसवा रानीकी जान लेली।

हे मंत्रियो! इस पापके सन्तापसे तो अब मुझे प्राण धारण करनेकी भी इच्छा नहीं होती। इस लिये तुम लोग लकड़ियाँ लाकर मेरे लिये चिता रचाओ, जिसमें प्रवेश कर मैं इस जल-नसे छुटकारा पा जाऊँ।"

राजाकी ये उटपटाङ्ग बातें सुनकर सभी लोग हक्काबक्कासे हो गये और आश्चर्यके साथ एक दूसरेका मुँह देखने लगे। चारों ओर हाहाकारसा मच गया। बाहर-भीतर सब जगह लोग यह कह-कह कर रोने लगे,—"हाय! देवी! तुम कहाँ चली गयी? हे आर्य-पुत्र! तुम ऐसे निर्दय क्यों हो गये? तुमने ऐसी निठु-राई किस लिये की?"

थोड़ी ही देरमें यह समाचार सारे नगरमें फैल गया। सब लोग राजाके इस भयङ्कर कृत्यपर उन्हें दोष देने लगे। लोग रानीके लिये हाय-हाय करने लगे। सारे नगरमें शोककी नदीसी उमड पड़ी।

इस प्रकार सारी राजधानीमें अपार शोक फैला हुआ देख, राजाका दुःख दूना हो गया। उन्होंने अपने मन्त्रियोंको बुला-कर कहा,—"क्यों भाई! तुमलोग मुझे इस प्रकार विकट वेदना सहनेके लिये क्यों लाचार करते हो? शीघ्रही मेरा जीवनान्त कर डालो, जिससे मैं इस सङ्कटसे उद्धार पा जाऊँ"

यह सुन, मन्त्री आदिने कहा,—"महाराज! आप कटेपर नोन न छिड़कें, एक तो आपने बहुत बड़ा अपराध कर ही डाला है। अबके फिर दूसरा अपराध करनेको क्यों तैयार होते

हैं ? हम जैसे साधारण मनुष्य किसी तरहका भय उपस्थित होने पर धीर पुरुषोंके पास जाते हैं; पर जब आप जैसे धीर पुरुषही इस प्रकार धीरज छोड़ बैठेंगे, तब हमलोग कहाँ जायगे ? हे स्वामी ! राजका त्याग कर, कुलका ध्वंस कर, कौन मरना चाहता है ? ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो अपना घर जलाकर उजेला करेगा ?"

इस प्रकार बहुत समझाने बुझाने पर भी राजाने नहीं माना और मंत्रियोंके लाख रोकने पर भी आगे बढ़े। राजाने अपने कुल राजचिन्होंको छोड़ दिया और नगरसे बाहर नन्दन वनकी ओर गये।

इस प्रकार जब और कोई उपाय न रहा, तब गज श्रेष्ठीने आगे आकर कहा,--"हे स्वामी ! पासही देवाधिदेव जगत्प्रभुका मन्दिर है। उनकी पहले पुष्प-चन्दन आदिसे पूजा करो। इसके बाद वहीं जो अमिततेज नामक गुरु रहते हैं, उनकी वन्दना करो, जिससे इस लोक और परलोकमें भी मङ्गल हो।

सेठकी इन आग्रह भरी बातोंको सुन और यह समझकर, कि यह जो कह रहा है, वह अगले जन्ममें सुख पहुँचाने वाला है, राजा जिन मन्दिरमें चले आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भक्ति-पूर्वक जिन-मूर्त्तिकी पूजा की। इसके बाद गुरुके पास वन्दना करनेके लिये आये। उस समय गुरु महाराजने देशना देनी शुरु की,--"यह संसार एक समुद्र है, जिसमें जन्म-जरा-मृत्यु रूपी जल भरा हुआ है। आधि-व्याधि-रूपी वड़वाग्नि

इसके अन्दर छिपी है। इसमें अज्ञान, राग और द्वेष-रूपी बड़े-बड़े मगर-मच्छ भरे हैं। मनुष्य, तिर्यंच, नरक और स्वर्ग रूपी चार गतियाँ इसमें पायी जाती हैं, जिनके फेरमें पड़कर जीव अनन्तवार दुःख भोगते रहते हैं। इसके सिवा इसमें क्रोध मान, माया और लोभ रूपी चार सर्प हैं, जो सब प्राणियोंको डँसते और डरवाते रहते हैं। इनमें क्रोध तो प्रेमका नाश करता है, मान विनयका नाश करता है माया मित्रताको मिट्टीमें मिलाती है, और लोभ सर्वनाश कर डालता है। हे राजन्! क्रोधातुर मनुष्य कार्य अकार्य, हित-अनहित, युक्त-अयुक्त, सार-असार और गुण-अवगुणका विचार नहीं करता। क्रोधके वशमें पड़कर मनुष्य ऐसा काम कर बैठता है, जिससे उसे इस भवमें भी दुःख होता है और परभवमें भी। क्रोधकी हालतमें किया हुआ दुस्साहसिक कार्य पूर्वकालमें पद्म राजाकी तरह शल्यवत् अनर्थकारी हो जाता है।"

यह सुन, राजाने कहा,—"हे भगवन्! इस जगत्में मुझसा पापी दूसरा कोई न होगा। कृपाकर मुझे पद्म राजाका हाल सुनाइये।"

गुरुने कहा,—"इस अपार संसारमें प्राणियोंको अनन्तर बार इस तरहके माँज़रे देखनेमें आते हैं। खैर, पद्म राजाकी कथा सुनो। किसी जमानेमें पद्मपुर नामक नगरमें पद्मनाभ नामके राजा राज्य करते थे। एक दिन वे बाहरसे घुम फिर कर घर लौट रहे थे। इसी समय उन्होंने अपने घरके कोठेकी

खिड़की पर सखियोंके संग हँसती-खेलती हुई वरुण सेठकी लड़की कमलाको देखा। कमला साक्षात् कमलाही थी। उसकी सुन्दरता खूब बढ़ी-चढ़ी हुई थी। इसीसे अपने घरमें अनेक सुन्दरियोंके रहते हुए भी वे उसके रूपपर मोहित हो गये। सच है, इस संसारमें लाख धन पाकर भी लोभीको, हज़ार स्त्रियाँ पाकर भी कामीको, देश-देशका राज्य पाकर भी राजाको और असंख्य काव्योंको पढ़कर भी विद्वान्को सन्तोष नहीं होता।

बस राजाने उसी समय उस लड़कीके पिताके पास कहला भेजा, कि तुम अपनी लड़की मुझे दे दो। फिर क्या था? झटपट व्याह हो गया; परन्तु कन्या अपने माँ-बापसे अलग होना नहीं चाहती थी, इसी लिये पीहरमें ही रही। इसी तरह बहुत दिन बीत गये। राजा उस वणिक-पुत्रीकी बात भी भूलसे गये।

बहुत दिनों बाद एक दिन उसी लड़कीको प्रौढ़ावस्थामें आयी हुई देख, राजाने अपने एक मित्रसे पूछा,—"क्यों भाई! यह स्त्री कौन है?"

मित्रने कहा,—"बहुत दिन हुए, आपने वरुण सेठकी जिस लड़कीसे व्याह किया था, यह वही है।"

यह सुन, उन्हें सब बातें याद हो आयीं और वे बोले,—"ओह! मैंने तो इसके साथ व्याह कर इसकी मिट्टी ख़ूब ख़राब की।" फिर अपने मित्रसे बोले,—"यह इस तरह मैले-कुचैले

वस्त्र क्यों पहने हुई है? इसकी देहपर गहने भी तो नहीं दिखाई देते!"

मित्रने कहा,—"राजन्! जो स्त्रियाँ शीलरूपी भूषणसे भूषित रहती हैं, उनका यही धर्म है, कि पतिके विरहमें किसी तरहका शृङ्गार न करें; क्यों कि कामाग्निसे चाहे सारा शरीर जलकर भस्म हो जाय; तोभी कुलाङ्गनाएँ अपने सदाचारको नहीं छोड़तीं!"

इसके बाद राजाने उस स्त्रीको बुलानेके वास्ते आदमी वहाँ भेजे। उसके पिताने यह देख, बड़े आनन्दसे उन आदमियोंके साथ बेटीकी बिदाई कर दी। राजमहलमें आकर वह बेचारी वर्षोंकी विरहिणी बड़ी सुखी हुई।

रातके समय जल्दी-जल्दी सभा विसर्जन कर राजा उससे मिलनेके लिये महलोंमें आये। राजाके पास पहुंचते ही कमलाने आदरके साथ उठकर खड़ी होती हुई उन्हें प्रणाम किया। राजाने कहा,—"हे प्यारी! मैंने इतनी उतावलीके साथ तुम्हारे साथ ब्याह करके भी इतने दिनोंतक तुम्हें भुला रखा, इसके लिये मुझे क्षमा करना।" यह कह राजाने उसे अनेक प्रकारसे आनन्दित किया।

उसने भी कहा,—"प्राणेश्वर! आपके पीछे तरह-तरहके झंझट लगे हैं, इस लिये आप यदि मुझे भूल गये, तो आपका कोई अपराध नहीं, सारा अपराध मेरे खोटे भाग्योंका है।"

इसके बाद दोनों प्रिया-प्रियतम बड़े सुखसे परस्पर मिले।

उस समय उसकी लज्जाहीनता और कामकलामें प्रवीणता देख कर राजाके मनमें बड़ी शङ्का उपजी। सच है, कभी-कभी गुण भी दुःखदायी ही हो जाते हैं।

भोर होते-होते राजाने अपने मनमें विचार किया,—"यह स्त्री प्रौढ़ा हो गयी है। इसकी चतुराई विचित्र है। कुल-नारीसे पतिके साथ पहली ही भेंटमें ऐसी बेहयाई नहीं दिखलाते बनेगी। यह अवश्य ही बदचलन है। इसे मार डालूँ या क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।"

यही सोचते-सोचते राजाको बड़ा गुस्सा चढ़ आया, पर यही सोचकर, कि स्त्रीको मारना भले आदमीका काम नहीं, वे दूसरा उपाय सोचने लगे। सोचते-ही-सोचते वे घरसे बाहर निकले और तुरत ही मन्त्रीको पास बुलाकर बोले,—"तुम इस बदचलन औरतको चाहे जैसे मरवा डालो।"

लाचार मन्त्रीने उस स्त्रीको पकड़कर एक एकान्त स्थानमें ले जाकर रखा। इसके बाद वह बेचारा सोचने लगा,—"इस संसारमें मनुष्यके बड़े-बड़े विचित्र चरित्र दिखाई देते हैं। सभी राग-द्वेषके इशारे पर नाच रहे हैं। रागमें पड़ा हुआ मनुष्य दोष रहते हुए भी नहीं देखता और जो गुण नहीं होता, उसकी भी कल्पना कर लेता है। द्वेषमें इसका हाल ठीक उलटा ही हो जाता है। इस समय राजा भी क्रोधमें पड़े हुए हैं, इस-लिये उन्हें भले बुरे की पहचान नहीं है, इसलिये मेरा इस समय यही कर्त्तव्य है, कि उन्हें इस प्रकार अनर्थ न करने दूँ।"

यही सोचकर मन्त्रीने उन्हें आश्वासन देनेकी ठानी और सोचते-विचारते हुए राजसभामें पदार्पण किया ।

वहाँ पहुँच कर उसने देखा, कि दरबार सजा हुआ है । चारों ओर लोग बैठे हुए हैं । बीचमें रखे हुए सिंहासन पर राजा भी भोरके दीपककी तरह मलिन मुँह किये विराज रहे हैं । इसी समय विष्णुकण्ठ नामके एक वाचाल ब्राह्मणने कहा,—"हे सभासदो ! सुनो आज एक बड़ी ही विचित्र घटना हो गयी है ।"

यह सुन, चारों ओरसे लोग लगे पूछने,—"क्या हुआ ? क्या हुआ ? जल्द कहो ।"

यह सुन, उसने कहा—"इस नगरमें सभी अच्छे गुणोंसे अलंकृत धन्य नामका सेठ रहता था । वह सब व्यापारियोंमें नामी था । उसकी स्त्रीका नाम श्री था । उनके धन, धनद, धर्म और सोम नामके चार लड़के थे । ये चारों ठीक समयपर ब्याहे जा चुके । एक दिन एकाएक धन्यको बहुत बड़ी व्याधि लग गयी । सारे वैद्य उसके जीवनसे हाथ धो बैठे । इसी समय उस सेठके सब अपने-यगाने भी आ इकट्ठे हुए और बोले,—"सेठजी ! तुमने ख़ूब धन और धर्म कमाया, इसमें सन्देह नहीं । उस धनका तुमने अच्छा उपयोग भी किया ; परन्तु अब तुम इस संसारसे विदा हो रहे हो, इसलिये अपनी सम्पत्तिका बँटवारा कर जाओ, नहीं तो लड़के तुम्हारे बाद आपसमें लड़ मरेंगे ।

"बात सेठको भी जँच गयी। वह उसी समय अपने धनका बँटवारा करनेके लिये तैयार हो गया। उसने अपने पुत्रोंको अपने पास बुलाकर कहा,—"मेरे प्यारे पुत्रो! देखो, मेरे मरे बाद तुम लोग आपसमें मिल-जुलकर रहना। कभी आपसमें झगड़े-लड़ाईका बीज न बोना। यदि कदाचित् प्रेमका निर्वाह न हो सके, तो ख़ज़ानेके अन्दर जो चार कलश चारों दिशाओंमें रखे हैं, उन्हें ही आपसमें बाँट लेना।"

यही कहता हुआ बुड्ढ़ा मर गया। पुत्रोंने उसकी मरनेके बादकी क्रियाएँ कीं।

कुछ दिन तो उन्होंने बड़े मेलसे बिताये; पर पीछे औरतोंके कारण उनके बीचमें खटाई पड़ने लगी। तब उन लोगोंने पिता-के कहे अनुसार वे चारों कलश निकाले। खोलकर देखनेपर एकमें धूल, दूसरेमें हड्डियाँ, तीसरेमें पोथी-पत्रा और चौथेमें अशर्फ़ियाँ निकलीं। यह देख, तीनों बड़े भाई बड़े दुःखी हुए; पर छोटेकी खुशीका तो कोई ठिकाना ही नहीं था।

पहले तीनों भाई तो अपनी आशाओं पर पत्थर पड़ जानेके कारण ज़मीनपर गिर पड़े और सिर पीट-पीट कर रोने लगे। उन्होंने रोते-रोते कहा,—"बुड्ढ़ा हमारा बाप नहीं, दुश्मन था। उसने माल तो सोमके लिये रख छोड़ा और हमें फूटी कौड़ी भी न दी।"

इस पर पाँच पञ्चोंने मिलकर कहा,—"तुम चारों भाई सोमकी अशर्फ़ियोंमेंसे बराबर-बराबर बाँट लो।"

सोमने कहा,—"मुझे मारकर भले ही ले लो ; पर जीते-जी तो मैं इसमेंसे एक भी अशर्फ़ी किसीको न लेने दूँगा। पिताजी सबके लिये समान भावसे सम्पत्तिका बँटवारा कर गये थे ; पर इनके भाग्य-दोषसे इनका धन धूल-मिट्टी हो जाये, तो इसमें मेरा क्या अपराध है? फिर आप लोग मेरे हिस्सेमेंसे उन्हें क्यों दिलवाते हैं?"

तीनों बड़े भाइयोंने कहा,—"रे मूर्ख! तू लोभ करता है ; पर तेरा मतलब हरगिज़ पूरा न होगा। ज़रा पाँच पञ्चोंकी भी तो कही मान। देख, कि वे क्या कहते हैं? जो सब लोग हिस्सा लगाकर तुझे दें, वही लेकर सन्तोषकर, सारे धन पर जी मत ललचा।"

इसपर बड़ी देरतक तू-तू मैं-मैं होती रही, पर झगड़ेका किसी तरह फ़ैसला होता नहीं दिखाई दिया। तब उनके हितैषियोंने कहा,—"देखो, तुम लोग व्यर्थ लड़ाई न करो। वनज-व्यापार करो और अपना मुक़द्दमा राजदरबारमें ले जाओ।"

यह बात उन लोगोंने स्वीकार कर ली ; पर छः महीनेतक धर्माधिकारीके यहाँ मामला चलते रहने पर भी कोई फ़ैसला नहीं मिला। अब राजन्! आप भी तो ज़रा सोचें, कि यह कैसा विचित्र मामला था?"

राजाने कहा,—"तो क्या उनका झगड़ा फिर कभी निपटाही नहीं?"

उस ब्राह्मणने कहा,—"नहीं, उनका झगड़ा किसीने नहीं

निपटाया। इसीसे उदास होकर वे परदेश चले गये। घूमते-घूमते एक दिन वे एक गाँवमें पहुँचे। वहाँ एक जगह चौपालमें सभा जुड़ी बैठी थी। एक बूढ़ा पशु-पालक सरदारकी तरह बैठा हुआ था। उसे प्रणाम कर वे चारों भाई वहीं चुपचाप खड़े हो रहे। यह देख, उस बूढ़ेने पूछा,—"भाइयों! तुम लोग कौन हो और क्या चाहते हो? इसके उत्तरमें उन चारों भाइयोंने अपना हाल सुनाते हुए उससे झगड़ा निवटा देनेको कहा। यह सुन, उस बूढ़ेने कहा,—"तुम्हारे बाप बड़े पण्डित और तुम लोगोंका भला चाहनेवाले थे, ऐसा मालूम पड़ता है।"

उन चारोंने कहा,—"चाहे जैसे हो वैसे, आप हमारा यह झगड़ा निवटा दें।"

वृद्धने कहा,—"तुम्हारे पिता बड़े बुद्धिमान् थे, जो जिस योग्य था, उसे उन्होंने वैसाही दिया। पहले कलशमें जो धूल भरी है, उसका मतलब यह है, कि वे अपने बड़े बेटेको सारी खेती-गृहस्थी सौंप गये हैं। दूसरेमें जो हड्डियाँ निकली हैं, उसका मतलब यह है, कि वे दूसरे बेटेको सब जानवरोंका मालिक बना गये हैं। तीसरेमें बही-बस्ता निकला, इसका मतलब यह, कि उसे वे व्यापारका सारा बही-खाता देखने, समझने-बूझने और लिखनेका काम सौंप गये हैं। चौथेको नगद द्रव्यही दे गये हैं। सो यदि तुम लोग विचार कर सम्पत्तिका बँटवारा कर लो, तो फिर लड़ाई किस लिये हो? विचार करनेसे तुम्हें अपने पिताका न्याय बड़ाही अच्छा मालूम

पड़ेगा। भाइयों! द्रव्य क्या है? पानीका बुलबुला है। चाहे कितना भी नगद धन किसीके पास क्यों न हो; पर वह नष्ट होही जाता है। इस लिये तुम लोग उन मुहरों पर मन न ललचाओ; बल्कि पिताके इच्छानुसारही कार्य करो। अपनी अज्ञानताके मारे पिताको दोष न दो। जिसने तुम्हें पाल-पोस कर इतना बड़ा कर दिया, वह मरती वेर तुम्हारे साथ अन्याय क्योंकर कर जाता? अपनी भूल समझ लो और उनको दोष देना छोड़ दो।"

बूढ़ेकी यह बात सुन, उन तीनों भाइयोंने छोटे भाईको गले लगाते हुए कहा,—"भाई! हम लोगोंने लोभमें पड़कर जो तुम्हें इतना तङ्ग किया, उसके लिये क्षमा करना।"

यह देख, छोटे भाईने भी उन तीनोंके चरणोंमें प्रणाम कर कहा,—"भाइयो! तुम लोग मुझसे बड़े हो, इस लिये पिता तुल्य हो। मैंने मूर्खताके कारण जो तुम्हें कड़वे वचन कहे, इसके लिये मुझे क्षमा करो।"

इस प्रकार आपसमें क्षमा-प्रार्थना कर वे चारों भाई उस बुड्ढ़ेसे बोले,—"हमारे पिताजी मर गये थे; पर आज हमने फिरसे पिता पा लिया। आपने जो हमारा झगड़ा निवटा दिया, इसके लिये हम आपकोही अपना पिता जानते हैं।"

इस प्रकार चित्त-शुद्धि कर वे चारों भाई अपने घर आये और बड़े मेलसे सानन्द रहने लगे।"

यह कहानी सुन, सब सभासदोंने कहा,—"अरे यह तो

तुमने बड़ी अचरज-भरी बात सुनायी। भला जिस मामलेका फैसला राजदरबारसे भी न हुआ, उस एक देहाती बुड्ढेने क्योंकर निवटा दिया?"

यह सारा हाल सुन, राजाने अपने मनमें सोचा,—"जिस बुड्ढेने उन चारों भाइयोंकी बात पहले कभी सुनी भी नहीं थी, उसने जब उनके पिताका मतलब ताड़ लिया, तब यदि मेरी प्रिया, जिसने सब विद्याएँ पढ़ी हैं, काम-कलामें प्रवीण हो तो क्या आश्चर्य है? मैंने ज़रूर भूल की है। मैं बहुत अन्याय करने जा रहा हूँ। मैं अभागा और बेहया हूँ। तभी तो ऐसे स्त्री-रत्नको मरवाने जा रहा हूं!"

बड़ी देर तक यही सब सोचनेके बाद उस राजाने उदास चेहरा बनाये हुए मन्त्रीसे कहा,—"मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने घोर अधर्म किया है। उसे पहले तो पिताके घर छोड़कर दुःख दिया। इसके बाद यहाँ आने पर उसकी जानही ले ली। अब मैं उसे क्योंकर जीती पाऊँगा? इस लिये अब तो मेरा मरजानाही ठीक है।"

राजाके इन पश्चात्ताप-पूर्ण वचनोंको सुनकर मन्त्रीने कहा,—"हे स्वामी! सच्चे सेवकका काम स्वामीके भले-बुरेकी चिन्ता करते रहना ही है। जो काम अच्छी तरह विचार कर किया जाता है, उसीका फल अच्छा होता है। जल्दी-बाजीमें कोई काम करनेसे पीछे पछतावाही हाथ आता है, क्योंकि सहसा कोई कार्य करनेसे मनुष्यको विवेक नहीं रहता

और विवेक नष्ट होनेसे तरह-तरहकी, आपत्तियाँ आती हैं। बिना विचारे कार्य करनेवाले मनुष्यको अपने सुख और सम्पत्तिसे हाथ धोना पड़ता है। उस समय मैं आपकी आज्ञाके अनुसार नयी रानी साहबाको अपने साथ ले तो गया; पर मैंने उनकी जान न लेकर उन्हें एक गुप्त स्थानमें छिपा रखा है। इस लिये वे मरी नहीं, जीती हैं।"

मन्त्रीकी बात सुन, राजाने प्रसन्न होकर कहा,—"भाई! तुमने उसकी रक्षा करके मेरी रक्षा कर ली।"

इसके बादही राजाने उन्हें बुलवाकर अपने महलोंमें रख लिया और बार-बार उनसे क्षमा माँगी। उस दिनसे दोनों स्त्री-पुरुष सदा बड़े प्रेमसे रहने लगे।

—०—

छठा परिच्छेद

मिलाप।
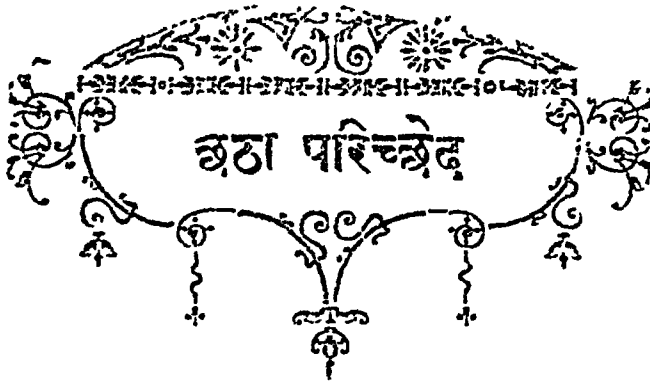
इतनी कथा सुनकर मुनिजीने कहा,—"हे राजन्! जैसे बिना विचारे कार्य करनेके कारण अन्तमें पद्मराजाको पश्चात्ताप करना पड़ा था, वैसे ही तुम भी पछता रहे हो; पर जैसे धर्मात्मा मनुष्य दूसरोंकी हत्या करना पाप समझते हैं, वैसे ही आत्महत्या करना भी घोर अधर्मकी बात समझते हैं। जो मनुष्य इस तरह दुःखोंसे ऊबकर आत्महत्या करनेको तैयार होते हैं, वे भला धर्मकी साधना क्यों नहीं करते? धर्म सारे दुष्कर्मोंका नाश करने वाला है। इससे सभी सत्कर्मोंकी प्राप्ति होती है। यह अनेक प्रकारके सुख देने वाला है। यही नहीं, इस असार संसारमें धर्महो एक सार है।"

राजाने कहा,—"हे पूजनीय! दुःखकी दावाग्निमें जलते हुए मनुष्यसे धर्म भी तो करते नहीं बनता। इस लिये मुझे किसी प्रकार इस समय धर्मका सहारा दीजिये।"

मुनिने कहा,—"राजन् ! तुम दुःखोंसे घबराकर प्राण देने जा रहे हो, परन्तु सच जानो, इससे तुम्हें और भी दुःख होगा ; क्योंकि दुःख पापसे ही पैदा होते हैं । किसीका प्राण-नाश करनेसे पाप लगता है और पराये के प्राण लेनेसे भी अपने प्राणोंके नाशका पाप बढ़कर होता है । इसलिये आत्महत्याके पापका विचार कर और यह जानकर, कि धर्मसे ही सुख होता है, तुम जिन-कथित धर्मका एक दिनके लिये भी पालन करो, तो तुम्हें पुत्र सहित कलावती प्राप्त हो जायगी । उसके साथ रहकर तुम बहुत समय तक संसारके सब सुख भोगोगे । उसके बाद राज्य-लक्ष्मीका त्याग कर तुम दोनों स्त्री-पुरुष दीक्षा ग्रहण कर लेना ।"

इस प्रकार गुरुके वचनोंसे राजाका चित्त बहुत कुछ स्वस्थ हो गया, इसलिये उन्होंने वह रात वहीं बितायी । प्रातःकालके समय उन्होंने यह सपना देखा, कि कल्पवृक्षसे लिपटी हुई कोई लता फूली-फली थी—उसे किसीने काटकर नीचे गिरा दिया; फिर तुरत ही वह लता ज्यों-की-त्यों फल-फूलवाली हो गयी । बस राजा तुरतही उठ बैठे और गुरुके पास आ, उन्हें प्रणाम कर, अपने सपनेकी बात बड़ी विनयके साथ उन्हें कह सुनायी । सब सुनकर गुरुने कहा,—"तुमने उस देवी-रूपिणी गर्भवती नारीको त्याग किया, वही तुम्हें फलवाली लताके रूपमें नज़र आयी है । अब आजही तुम फिर उसे पा जाओगे । साथही फल-रूपी पुत्र भी तुम्हें प्राप्त होगा ।"

यह सुन, राजा बड़े आनन्दित हुए और कहने लगे,—"हे प्रभो! आपकी कृपासे मेरा सब कुछ भलाही होगा।"

इसके बाद उन्होंने अपने घर आ, लज्जासे सिमटे हुए दत्त को बुलाकर कहा,—"मित्र! मैंने मति बिगड़ जानेके कारण घोर पाप कर डाला, अपने निर्मल कुलमें दाग लगाया, परन्तु गुरु महाराजकी अमृत-सरीखी वाणीसे मुझे बड़ा धैर्य प्राप्त हुआ। आज सारा दिन मैं आशाके साथ कलावतीके आनेकी राह देखता रहूँगा। यदि वह साँझ तक नहीं आयी, तो अवश्य ही प्राण दे दूँगा। इसलिये तुम अभी घोड़े पर सवार हो, उसकी खोजमें चले जाओ।"

यह सुनते ही "जैसी प्रभुकी आज्ञा" कहता हुआ दत्त वहाँ से चल पड़ा और जैसा कि उसने सुना था, तदनुसार ही रास्ता पकड़ा। जाते-जाते उसे रास्तेमें एक तपस्वी मिला। उसे प्रणाम कर दत्तने पूछा,—"मुनिवर! क्या आपने या आपके किसी साथीने यहाँ कहीं कोई गर्भवती अथवा हालका पैदा बच्चा लिये हुई स्त्री देखी है?"

उसने पूछा,—"तुम कौन हो और कहाँसे आये हो?"

दत्त,—"मैं शंखपुरसे आया हूँ और मैं वहींके राजाका भेजा हुआ हूँ।"

मुनि,—"क्या अबतक उस राजाका कोप उस बेचारीपरसे नहीं दूर हुआ? मरेपर मारना, इसीका नाम है।"

दत्त,—"महाराज! अब हमारे राजाका उनपर कोई

क्रोध नहीं है। उलटे वे बहुत पछता रहे हैं। इस समय विशेष बातें करनेका समय नहीं है; क्योंकि यदि सन्ध्याके पहले-पहले राजाने उन्हे नहीं देखा, तो वे प्राण दे देंगे।"

यह सुन, वह दयालु तापस दत्तको अपनी कुटियामें ले आया। वहां कुलपतिको प्रणाम कर, थोड़ेमें उन्हें सारा हाल सुना कर दत्तने कहा, "प्रभो! आप हमारे राजाको अभय दान दें।"

उसी समय कुलपतिने कलावतीको बुलवाया। उसने ज्यों ही दत्तको कुलपतिके पास बैठा देखा, त्योंही उसकी आँखें भर आयीं। वह और तो कुछ न कह सकी—पुका फाड़कर रोने लगी।

उसे यों रोते देख, उसे ढाढ़ल बँधाते हुए दत्तने कहा,—"बहन! तुम खेद न करो। यह सब कर्मोंके खेल हैं। अपने किये हुए कर्मोंका भोग मनुष्यको भोगना ही पड़ता है। मनुष्यका ता एक हाना लग जाता है। दुष्कर्मका उदय होने से माँ बाप, भाई, स्वामी, पुत्र, पुत्री आदि सगे-सम्बन्धी भी शत्रु हो जाते हैं और पुण्यका उदय होनेसे वही सुख देनेवाले बन जाते हैं। इसलिये विपद पड़ने पर मनुष्यको धैर्य धारण करना ही उचित है और अधिक तुमसे क्या कहूँ? यही जानना कि जितना दुःख तुमने उठाया है, उससे अधिक तुम्हारे स्वामीको तुम्हें देखे विना हो रहा है। वे तो पछतावेकी आगमें ऐसे जल रहे हैं, कि सचमुच आगमें कूदनेको तैयार हैं। यदि आज साँझतक वे तुम्हें जीती न देख लेंगे, तो अवश्य ही

कलावती

उसने ज्योंही दत्तको कुलपतिके पास बैठा देखा, त्योंही उसकी आँखें भरआयीं। पृष्ठ ४६

जल मरेंगे, इसलिये मेरे साथ रथपर बैठ कर जल्दी चलो, देरी न करो ।"

यह सुन बेचारी कलावती बड़ी घबराहट में पड़ी और पतिसे मिलने को आतुर हो गयी; क्योंकि कुलाङ्गनाओंकी यह रीति है, कि अपनेको दुःख देनेवाले स्वामीका भी वे भलाही चाहती हैं। इसके बाद वह कुलपतिको प्रणाम कर अन्य तापसोंके साथ मीठी-मीठी बातें कर, सबसे विदा माँग, रथ पर पुत्र सहित आ सवार हुई।

सन्ध्याके समय वे लोग उस वनमें पहुँचे, जहाँ उन लोगोंके आनेकी राह देखते हुए राजा टिके पड़े थे। कलावतीके हाथ-पैर साबित देखकर राजा बड़े ही खुशी हुए, पर मारे शर्मके वे उसके सामने सिर उठाकर देख न सके। अब क्या था? चारों ओरसे लोग बधाइयाँ लेकर वहाँ आने लगे। थोड़ी रात जाते-न-जाते वहाँ बाजे-गाजे बजते सुनाई पड़ने लगे। बड़ी देर तक उस स्थान पर बने हुए मण्डपमें बैठे रहनेके बाद राजा अपनी प्रियाके पास आये। दोनोंके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये। कलावतीने सिर झुकाये ही स्वामीको प्रणाम किया। उस समय साहस कर राजाने अपनी प्यारीकी ठुड्डी पकड़, उसका सिर ऊपर उठाते हुए मीठी बोलीमें कहा,—"अहा! तुमने आज मेरी जान बचा ली!"

राजाकी बात काटती हुई कलावती बोली—"मुझ अभागिनीकी इतनी बड़ाई न कीजिये।"

राजाने कहा,—"प्रिये! मैंने बड़ी भारी मूर्खता और नीचताका काम किया था; क्योंकि मैंने तुमसी सती-शिरोमणि सुशीला और गुणवतीको इतना कष्ट पहुँचाया।"

यह सुन सती कलावती बोली,—"स्वामी! आपका कोई अपराध नहीं है। आप मुझे इतना मानते थे, कि जिसका हिसाब नहीं, पर आप मेरे कर्मोंको क्या करते? कर्म-योगसे क्या नहीं हो जाता? तोभी हे स्वामी! मैं आजतक यह बात न समझ सकी, कि आपने मुझे ऐसा कठोर दण्ड किस लिये दिया? क्योंकि राजा तो अपराधीको ही दण्ड देते हैं। यही उनका राजधर्म है।"

राजाने कहा,—"जैसे गूलरमें फूल नहीं होता और बेंतमें फल नहीं लगता, वैसेही तुमको दोष तो छू भी नहीं गये हैं, तोभी मैंने अपनी अज्ञानताके मारे तुम्हें जो इतना कष्ट दिया, उसकी बात मत पूछो—मेरे मुँहसे वह बात नहीं निकलती; पर क्या करूँ? लाचारी है। नहीं कहनेसे तुम्हारा जी दुखेगा, इसीसे कहता हूँ।"

यह कह राजाने कलावतीको अपने कोपका कारण कह सुनाया। इसके बाद कलावतीने भी अपनी सारी कथा कह सुनायी। यह सुन, प्रसन्न होकर राजाने कहा,—"प्रिये! जब तक इस संसारमें सूरज और चाँद चक्कर लगाते रहेंगे, तबतक मेरे अपयशकी कथाका इस संसारमें प्रचार होता रहेगा। वैसे तुम्हारी कीर्त्ति भी लताकी तरह लहलहाती रहेगी। मैं तो तुम्हारे

लिये प्राण देने जा रहा था, पर गुरु महाराजके कहनेसे तुम्हें फिरसे पा जानेकी आशा हो आनेके कारण अबतक मरा नहीं।"

कलावती,—"स्वामी! मेरे लिये आपको इतना कष्ट हुआ और मुझे दुःखी जानकर आप इतने दुःखी हुए, यह आपकी मेरे ऊपर अपार दया है; परन्तु स्वामी! आपने दुःखमें पड़कर कुछ अनर्थ नहीं कर डाला, यह सब इसी पुत्रके पुण्योंका प्रभाव है। धन्य हैं वे गुरु महाराज, जिन्होंने आपको अच्छी मति दी। कृपा कर मुझे उनके दर्शन कराइये।"

राजाने कहा,—"हम लोग कल सवेरे अवश्य ही उनके दर्शन करने जायेंगे।"

इसी तरह बातोंमें रात बीत गयी। सवेरा होते ही दोनों स्त्री-पुरुष बड़ी धूम-धामसे गुरुकी वन्दना करने गये। वहाँ पहुँच, बड़े भक्तिभावसे गुरुकी वन्दना कर, वे यथोचित स्थानमें बैठ गये। उस समय गुरु महाराजने उन्हें शीलका माहात्म्य बतलानेवाली देशना ही कह सुनायी। उन्होंने कहा,—

"प्राणियोंका शील, कुलका उदय करनेवाला; शरीरका भूषण-स्वरूप; पवित्रता देनेवाला; विपद् और भयको दूर करनेवाला; दुःख और दुर्गतिका नाश करनेवाला; दुर्भाग्यका दलन करनेवाला; मनोवाञ्छित फल देनेमें चिन्तामणिके समान; व्याघ्र, सर्प, जल और अग्निके उपद्रवोंको दूर करनेवाला और स्वर्ग तथा मोक्षका देनेवाला है।

"जिस प्राणीने तीनों लोकमें चिन्तामणिके समान काम देने-

वाले अपने शीलका लोप कर दिया है, उसने मानों संसारमें अपने अपयशका ढोल पिटवा दिया है, अपने कुलमें कालिख लगा दिया है, चारित्रको जलांजलि दे दी है, गुणोंके बगीचेमें आग लगा दी है, सब आपत्तियोंको न्यौता देकर बुला लिया है और मोक्ष-नगरका द्वार बन्द कर दिया है।

"निर्मल शील, कुलकी मलिनताका नाश करता; पापका कीचड़ धो देता; पुण्यकी वृद्धि करता; प्रशंसा फैलाता; देवताओंको भी झुका देता; भयंकर उपद्रवोंका नाश करता और सहज ही स्वर्ग तथा मोक्ष दे डालता है।

"शीलके प्रभावसे मनुष्यके लिये आग भी पानी बन जाती है; सर्प भी माला बन जाता है; बाघ भी हरिन बन जाता है; मतवाला हाथी भी घोड़ा बन जाता है; पर्वत भी मामूली पत्थरका टुकड़ा हो जाता है; विप भी अमृत बन जाता है; विघ्न भी आनन्दके कारण हो जाते हैं; शत्रु मित्र बन जाते हैं; समुद्र क्रीड़ा करनेका सरोवर बन जाता है और जंगल भी अपना घर हो रहता है।

"हे राजन्! शीलका अद्भुत प्रभाव तो तुम सामने ही देख रहे हो। तुम्हारी स्त्री कलावतीके हाथ काट डाले गये; पर यह शीलवती थी, इसलिये शीलके प्रभावसे, सतीत्वके प्रतापसे, इसके हाथ फिर जैसेके तैसे हो गये। इस लिये शीलको तुम मनुष्यका बहुत बड़ा भूषण जानो।

"साथ ही हे राजन्! यदि सम्यक्त्वरूपी पवन सहायक हो

जाये, तो मनुष्य बड़ी आसानीसे इस संसार-रूपी समुद्रके पार उतर जाये। यही नहीं; बल्कि उसे समस्त स्वर्गीय सुख, सभी सुर-नरोंको प्राप्त होनेवाली ऋद्धि और अनेक प्रकारकी विद्याएँ भी प्राप्त होती हैं। परन्तु इस सम्यक्त्वकी प्राप्ति बड़ी ही कठिन है। जिस मनुष्यके हृदयमें इस रत्नका प्रकाश होता है, वह देव, गुरु और धर्मके तत्त्वोंको भली भाँति जान लेता है। सम्यक्त्व सब धर्मोंका मूल है। इसलिये सभी जीवोंको चाहिये, कि इसे प्राप्त करनेका उद्योग करें।"

इस प्रकारकी धर्मदेशना श्रवण कर, मिथ्यात्वकी कठिन गाँठ खुल जानेके कारण निर्मल ज्ञानवाले राजाने कहा,—"हे प्रभो! आपने जो निरन्तर प्रकाश करनेवाली साक्षात् रत्नके समान विशद रत्न-त्रयी बतलायी, उसको सभी विवेकी पुरुष अवश्य अङ्गीकार करेंगे। परन्तु हे भगवन्! पुत्रका स्नेह-रूपी बन्धन छुड़ाये नहीं छूटता, इस लिये आप हमें तो हमारे योग्य गृहस्थ-धर्म ही बतलाइये।"

यह सुन, करुणा-सागर गुरु महाराजने दोनों स्त्री-पुरुषको सम्यक्त्व मूलक श्राद्ध-धर्मका उपदेश दिया। इसके बाद दोनों उन्हें प्रणाम कर लौट आये और हाथीपर सवार हो अपने नगरकी ओर चल पड़े।

सातवाँ परिच्छेद

पूर्वजन्म।

हमारे राजा स्त्री-पुत्रके साथ चले आ रहे हैं, यह समाचार पाते ही सारे नगरमें आनन्दकी तरङ्गें उठने लगीं। आकाशमें मंगलके बाजे बजने लगे औरशील-धर्मकी मानों महिमा प्रकट करनेके लिये घर-घर तोरण और पताकाएँ दिखाई देने लगीं। सारे नगरके स्त्री-पुरुष राजा और रानीके दर्शन करनेके लिये रास्तेमें आ इकट्ठे हुए। कितनी ही स्त्रियाँ अंजलि भर-भरकर कलावतीपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं। कितनी ही ज़ोर-ज़ोरसे 'सतीकी जय' पुकारने लगीं। साथ ही कितनी उसके पुत्रको दीर्घायु होनेका आशीर्वाद देने लगीं।

राजाने दीन-दुखियोंको बहुतेरा दान दिया। राजाके प्राण बच गये, रानीके हाथ ज्योंके त्यों हो गये, उनके पुत्र हुआ, इत्यादि एकसे एक बढ़कर हर्षके संवाद सुन-सुनकर सारे नगरके लोग आनन्दसे बावले बन गये। जगह-जगह नाच-गान और गाजे-बाजेका समा बँध गया।

इसी तरह ग्यारह दिन बीत जानेपर राजाने बारहवें दिन अपने समस्त स्वजनोंको इकट्ठाकर कुमारका नाम पूर्णकलश रखा; क्योंकि वह जिस समय गर्भमें थे, उस समय रानीने पूर्ण कल-

शका स्वप्न देखा था। इस नामकरणके उपलक्ष्यमें खूब खाना-पीना और जलसा-तमाशा हुआ।

इसी प्रकार कुछ काल बड़े सुखसे वितानेके बाद सद्गुरुकी सङ्गतिसे शास्त्र-श्रवणमें प्रेम रखनेवाले, विषयासक्तिसे मुक्त हो जानेवाले, सन्तोषामृतका पानकर धर्ममें ही सुख माननेवाले दम्पतीने जीवन-भरके लिये ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया। गुरुकी गिरा-रूपी अमृतसे सिंची हुई उनकी मनरूपी भूमिमें सम्यक्त्वका बीज अङ्कुरित होकर धीरे-धीरे बढ़ने लगा। इस वृक्षकी शम, दम आदि शाखाएं और पूजा, सत्कार आदि पल्लव फैल गये और कुश्रुति-रूपी दूषित वायुका स्पर्श नहीं होनेके कारण धीरे-धीरे इस वृक्षमें फूल लगनेका समय आ पहुँचा।

तब तो सदा धर्म-कार्यमें आसक्ति रखनेवाले शंख राजाः कई जीर्ण चैत्य (जिन-मन्दिर) फिरसे बनवा दिये, कितने ही नये मन्दिर बनवाये, उनमें जिन मूर्त्तिकी प्रतिष्ठाकर बड़ी धूम-धामसे पूजा की। मुनि महाराजको नमन, स्तवन और वन्दन करके अशन, पान, शय्या, वस्त्र, पात्र और धर्मोपकरणका दान करने लगे। उन्होंने बहुतेरे स्वधर्मियोंका उद्धार किया श्रावकोंको कर-मुक्त कर डाला और जिनमतके विरोधियोंका निवारण किया। इसी प्रकार उन्होंने बहुत दिनोंतक धर्मका पालन किया।

एक दिन किसी धार्मिक व्रतके निमित्त जागरण करते हुए राजाने अपने पुत्रकी योग्यताका विचार करते हुए आप ही-आप कहा,—"अहा! शरीर और मन सम्बन्धी अनेक प्रकारके

दुःखोंसे यह संसार भरा हुआ है। इसके पार पहुँचना बड़ा ही कठिन है। विना अर्हत्-धर्म—रूपी जहाज़का सहारा लिये इस समुद्रको कोई पार नहीं कर सकता। और विना मनुष्यका जन्म पाये धर्म-सम्बन्धी सम्पूर्ण सामग्री मिलेगी कहाँ? सिद्धान्त ग्रन्थोंमें दस दृष्टान्त देकर यह दिखलाया गया है, कि मनुष्य-भव बड़ा ही दुर्लभ है। यदि कदाचित् किसी शुभ कर्मके योगसे यह प्राप्त भी हो जाये, तो धर्म-श्रवण होना तो और भी दुर्लभ है। और यदि धर्म-श्रवणका योग भी किसी तरह प्राप्त हो जाये, तो उसके अनुसार आचरण करनेकी चातुरी नहीं होती। यह सब सामग्रियाँ इकट्ठी ही मिल जायें, तब कहीं मनुष्य-जन्म सार्थक होता है। ऐसा मनुष्य-जन्म और ये सब सामग्रियाँ रहते हुए भी मैं कुछ भी न कर सका। माता, पिता और स्वजन आदि इस संसारमें वन्धनके समान हैं। जवानी और धन-धान्यकी आशा स्वप्नकी तरह शीघ्र नाश होनेवाली है। स्त्री नरककी ओर ले जानेवाली है और राज्य दुर्गतिका कारण है। विषय विषकी बराबर हैं। कल्याण करनेवाला तो एकमात्र संयम ही है। इसलिये मैं तो सबको त्यागकर संयमको ही स्वीकार करूँगा।"

इस प्रकार विचार कर राजाने कलावतीसे पूछा। वह बोली,—"महाराज! हम लोगोंने बहुत दिनोंतक संसारके सुख भोगे, राज्यका ऐश्वर्य भोगा, पुत्ररत्न भी प्राप्त किया, अब तो हमें चारित्र ही ग्रहण करना चाहिये। इस जीवनको निस्सार

समझकर, सार-भूत संयमको स्वीकार कर, हमें निरतिचार-व्रतका पालन करना ही उचित है।"

जब रानीने भी उनका मत स्वीकार कर लिया, तब तो राजाका उत्साह बहुत ही बढ़ गया और उन्होंने मन्त्रीको बुलवा कर राजकुमार पूर्णकलशको गद्दीपर बैठा दिया। जिन मन्दिरोंमें खूब धूमधामसे उत्सव कराये। यतियों और धर्मात्माओंकी नाना प्रकारसे सेवा-पूजा की। अनेक क़ैदियोंको छुटकारा मिल गया। याचक अयाची हो गये। इस प्रकार आठ दिन तक उत्सव करके उन्होंने जन-समूहको नाना प्रकारके भोज्य पदार्थोंसे सन्तुष्ट किया।

इसी समय बगीचेके मालीने आकर कहा,—"हे महाराज! बहुतेरे मुनियोंसे घिरे हुए गुरु अमिततेज महाराज बगीचेमें पधारे हैं।"

यह सुन, प्रसन्न हो राजाने उसको बहुतेरा इनाम दिया। इसके बाद सब ऋद्धियों और परिवार-वर्गोंके साथ राजा अपनी रानी कलावतीके साथ-साथ सूरीश्वरजीके पास आये। वहाँ पहुँच पाँच बार परिक्रमा कर गुरुकी वन्दना करनेके बाद उन लोगोंने उनकी देशना सुनी। तदन्तर राजाने अवसर पाकर सूरीश्वरसे कहा,—"हे भगवान्! देवी कलावतीने पूर्वजन्ममें कौनसा ऐसा पाप किया था, जिससे मैंने उसके हाथ बेकसूर कटवा लिये।"

गुरुवर बोले,—"आप उसके पूर्व जन्मका हाल सुनिये, मैं बतलाता हूँ—

कलावतीका पूर्व जन्म।

महा विदेह क्षेत्रमें महेन्द्रपुर नामका नगर है। उसमें त्रिविक्रमकी तरह पराक्रमी नरविक्रम नामके राजा किसी समय राज्य करते थे। उनकी रानी लीलावती बड़ी ही सती और शुद्ध शीलवती थी। उसके गर्भसे एक कन्या हुई थी, जिसका नाम सुलोचना था। धीरे-धीरे जब वह लड़की जवान हुई, तब उसका मुख पूनमके चाँदकी तरह हो गया। अधरोंमें अमृत आ बसा, दाँत मणिसे चमकने लगे, कान्ति लक्ष्मीके समान हो गयी, चाल मतवाले हाथीकी सी हो गयी, शरीरसे पारिजात-पुष्पकीसी गन्ध आने लगी, वाणी कामधेनुसी मालूम पड़ने लगी, कटाक्षमें काल-कूट-विष नज़र आने लगा, मानो देवताओंने उसीके लिये समुद्र-मथन किया था। कहा है, कि—

"प्रायः सभी वरोंमें स्वभावतः अनेक क्रीड़ा-कौतुक वाली, सद्धर्म-कर्ममें लीन रहनेवाली, प्रीतिवाली, शीलवाली और अपने यौवनके सामने औरोंको लजा देनेवाली बालाएँ हुआ करती हैं।

"एक दिनकी बात है, कि वह कुमारी राजाकी गोद्में बैठी हुई थी ; उसी समय किसी पुरुषने आकर राजाको एक सुन्दर तथा विचित्र भाषा बोलनेवाला चतुर तोता भेंट किया। राजाने उस तोतेको हाथमें लेकर पुचकारना शुरू किया। जन्मसेही चतुर वह तोता अपना दाहिना पैर ऊपर उठाकर बोला--"हे पृथ्वीनाथ! आपने जिन शत्रुओंका मान-मर्दन किया है, उनकी स्त्रियोंकी लम्बी उसाँसोंसे समुद्रमें रहनेवाले पर्वत के शिखर भी टूटे पड़ते हैं, जिनके घहरानेसे आपके शत्रुओंकी नींद् हराम हो रही है।"

तोतेकी यह मीठी वाणी सुन, प्रसन्न होकर राजाने उसके लानेवाले को बहुतसा दान दिया और अपने शरीरपरसे गहना उतार कर दे डाला। इसके बाद राजाने वह तोता राज-कुमारीको दे दिया। उसने भी प्रसन्न हो, एक सोनेके पींजरेमें उसे बन्द्कर अपने घरमें रखा। वह उस दिनसे रोज़ उस तोतेको अनार, दाख, अंजीर आदि नाना प्रकारके फल-मूल खिलाती और शक्कर-मिश्री मिला हुआ पानी पीनेको देती। वह कभी तो उसे पींजरेमें बन्द् रखती, कभी अपनी गोद्में बैठाती और कभी तरह-तरहकी बोलियाँ बोलना सिखलाती थी। वह उसे अपने ही आसनपर बैठाती, अपनीही शय्यापर सुलाती, अपनेही साथ खिलाती और जहाँ-जहाँ खेलने जाती, वहाँ वहाँ साथ लिये फिरती थी। वह अपनी आत्माकी तरह उस तोतेको कभी अपनेसे अलग नहीं करती थी।

एक दिन वह राजकुमारी उस तोतेको पींजरेमें बन्द किये अनेक सखियोंके साथ नगरके समीप कुसुमाकर नामक बगीचेमें ले गयी। वहाँ उसने नरकादिका वारण करनेवाला, सिद्धि देनेवाला और आँखोंको आनन्द देनेवाला एक जिन-मन्दिर देखा। उसके भीतर जाकर उसने जो श्रीसीमन्धर स्वामीके दर्शन किये, तो उसे बड़ाही आनन्द प्राप्त हुआ। उसने बारम्बार उनकी वन्दना करते हुए इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की :—

जगत्के प्राणियोंके निस्तारणके निमित्त नौकाके समान, शम रूपी आराम (बागीचे) में विश्राम लेनेके लिये उत्सुक चित्तवाले, जिनके चरण-कमलोंमें नित्य अनेक इन्द्र नमस्कार करते हैं, ऐसे सीमन्धर स्वामीकी मैं वन्दना करती हूँ।

"वह तोता भी जिनेश्वर भगवान्की मूर्त्तिको देखकर सोचने लगा,—अहा! आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरे पुराने पुण्य जग पड़े! इसीसे मुझे जिनेश्वर भगवान्के दर्शन हुए। यह मूर्त्ति तो मैंने शायद पहले भी कभी देखी थी।'

"इसी तरह सोच-विचार करते-करते उस तोतेको पूर्व जन्मकी बातें याद हो आयीं। उसको साफ़ मालूम होने लगा, कि वह पूर्व-जन्ममें एक साधु था और सदा पढ़ने-पढ़ाने और पुस्तक संग्रह करनेमें लगा रहता था। परन्तु संयममें पक्का न होनेके कारण उसका व्रत खण्डित हो गया और वह यहाँ आकर तोता हुआ। पूर्वजन्मके अभ्यासके कारण पक्षी होनेपर भी उसका

ज्ञान पहलेकासा बना रहा। इसीलिये इस समय पूर्व जन्मकी सब बातें याद होनेसे उसे इस बातका पछतावा होने लगा, कि ज्ञानका दीपक हाथमें रहते हुए भी वह अज्ञानके अँधेरेमें ही पड़ा रहा और भवसागरके अन्दर आ पड़ा ; परन्तु यह भी पूर्व जन्मका पुण्यही है, जो इस तिर्यंच-भवमें भी मुझे श्रीजिनेश्वर भगवान्‌के दर्शन हुए। यही सोच कर उसने सङ्कल्प किया, कि आजसे विना इनके दर्शन किये मैं चारा नहीं लूँगा। ऐसा निश्चय कर, वह भी सुलोचनाके साथ-ही-साथ मन्दिरके बाहर आया।

"दूसरे दिन राजकुमारी तोतेको पींजरेसे निकाल भोजन कराने बैठी। इसी समय वह तोता 'नमो अरिहंताणं' कहकर श्रीजिनेश्वरके दर्शनार्थ उड़ गया। वहाँ भगवान्‌के दर्शन कर वह स्वच्छन्द रूपसे बागीचेमें घूम-घूमकर फल खाने लगा।

"इधर उसके वियोगमें सुलोचना अत्यन्त रुदन करने लगी। यह देख, बहुतसे सेवक उस तोतेकी खोजमें निकले। एकने कुसुमाकर नामक बागीचेमें उसे देख, जालमें फँसाया और उसे राजकुमारीके पास ले आया। कुमारी भी उसे ग्रहण कर, क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये हुई बोली,—'रे पाजी! तू मुझे धोखा देकर बागीचेमें भाग गया था? अच्छा, ले, आजसे मैं तुझे कभी पींजरेसे बाहर निकलने ही नहीं दूँगी। नहीं, नहीं, तुझे ऐसा कर दूँगी, कि तू कहीं आने-ही-जाने लायक़ नहीं रहेगा।' यही कहकर उसने उस तोतेके पंख नोच डाले।

बेचारा तोता छटपटाने लगा। राजकुमारीने उसे पींजरेके अन्दर डाल दिया। पींजरेमें जाकर तोता सोचने लगा,—'ओह! धिक्कार है ऐसी पराधीनताको। लोग ठीकही कहते हैं, कि पराधीन जीवको नीचातिनीच कार्य करना पड़ता है, मार-गाली सहनी पड़ती है, इस लिये पराधीनता नरक-वाससे भी बुरी है। पूर्व भवमें मुनि होते हुए भी मैंने क्रियानुष्ठान करनेमें प्रमाद किया, उसीका मुझे यह फल भोगना पड़ा। पर इसका क्या सोच? चोला बदल जानेपर जीवको न जाने क्या-क्या दुःख सहने पड़ते हैं। परन्तु इस बातका बड़ा भारी सोच है, कि अब मैं इस जन्ममें श्रीवीतरागके वदन-कमलके दर्शन नकर सकूँगा।"

"यही सोचता हुआ वह तोता बड़ा दुःखित हो गया, फिर उसने सोचा,—'हे आत्मा! अब तू सोच छोड़ दे; क्योंकि शोक करनेसे निविड़-कर्मका बन्ध होता है। अब तो मुझे अनशनही करना उचित है; क्योंकि मैंने तो प्रतिज्ञा की है, कि बिना जिन-मूर्त्तिके दर्शन किये मैं भोजन न करूँगा।"

यही विचारकर, अनशन करता हुआ वह पंचपरमेष्ठीका स्मरण करने लगा। इसी प्रकार अनशन करते हुए उसने पाँचवें दिन शरीर छोड़ दिया और सौधर्म नामके देवलोकमें जाकर महान् ऋद्धियुक्त देव हो गया। सुलोचना भी उसके दुःखसे दुःखित हो अनशन द्वारा समाधि-मरण प्राप्त कर उसी देवकी स्त्री हुई। वहाँ कुछ दिन विहार करनेके अनन्तर उनकी आत्माएँ संसारमें आयीं। हे राजन्! उस तोतेका जीव तो

तुममें है और सुलोचनाका जीव कलावतीमें। इसीलिये वह इस जन्ममें भी तुम्हारी प्रधान पट्टरानी हुई। राजन्! जीवको अपने किये हुए भले-बुरे कर्मोका भोग भोगनाही पड़ता है। कोई किसीके सुख-दुःखका कर्त्ता नहीं है। पूर्व जन्ममें इसने तुम्हारे पर नोचे थे, इसीलिये इस जन्ममें तुमने इसके हाथ कटवा डाले। कहा भी है, कि चाहे करोड़ों जन्म बीत जायें, पर किये हुए भले-बुरे कामका नतीजा भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता।"

गुरुके मुखसे इस प्रकार पूर्व जन्मकी कथा सुनकर संसार से वैराग्य हो आनेके कारण राजा और रानी दोनोंहीने हाथ जोड़े हुए गुरुसे निवेदन किया,—"हे स्वामी! इस संसार रूपी समुद्रसे उबारनेके लिये आप हमें दीक्षा-रूपी नौका दीजिये।"

गुरुने कहा,—"तुम लोग तत्वज्ञानके जाननेवाले हो, इस लिये तुम्हें ऐसाही करना चाहिये। कौन बुद्धिमान आदमी घरमें आग लगनेपर अपनी प्यारी-प्यारी वस्तुएँ बाहर न निकाल लेगा? हे राजन्! तुम बड़े शूर-वीर हो, इसीलिये इस प्रकार प्रव्रज्या अङ्गीकार करनेको तैयार हो।"

यह कह, आचार्यने कलावती सहित राजाको दीक्षा दी और आगम-शास्त्र आदिकी शिक्षा दी। राजर्षि शंख श्रुताभ्यास करते हुए गुरुके साथ विचरण करने लगे। शम-रूपी अमृतके कुण्डमें नहाते हुए, अनेक प्रकारके उपसर्गोंसे भी उद्विग्न नहीं होते हुए वह अपनेको राजराजेश्वरोंसे भी बढ़कर मानने लगे।

वे चारित्रका-पालन करनेमें अपनी सारी शक्ति लगाने लगे। यत्नसे उठना, बैठना, बोलना, चालमा, सोना आदि काम करने लगे। इस प्रकार बहुत दिनोंतक शुद्धचारित्रका पालन करते हुए जीवनके अन्तमें अनशन करते हुए समाधिमें मृत्यु प्राप्त कर, वे सौधर्म देवलोकमें पांच युगके आयुष्यवाले देव हुए। साध्वी कलावतीने भी उसी प्रकार चारित्र पालन कर मृत्यु होनेके अनन्तर देवीकी देह धारण की।

उपसंहार

प्यारे पाठको और पाठिकाओ! आप लोगोंको कलावतीके चरित्रसे कौन-कौनसी शिक्षाएं प्राप्त होती हैं, एक बार इसका विचार करना भी आवश्यक है। हमें इस कथासे एक बहुत बड़ी शिक्षा यही मिलती है, कि शीलही मनुष्यका सबसे उत्तम भूषण है। इससे सभी प्रकारके सङ्कट टल जाते हैं और सब प्रकारके मनोरथ सफल होते हैं। पद्म राजा और शंख राजाकी कहानियाँ पढ़कर हमको किसीके साथ बिना विचारे सहसा कोई अन्याय-अत्याचार करनेके लिये तैयार नहीं होना चाहिये।

साथही राजा शंख और रानी कलावतीने किस प्रकार इस संसारको असार समझकर अन्तमें चारित्रका पालन किया और उसके फलसे देव-गति प्राप्त की, यह देखकर हमें भी चारित्र ग्रहण करना चाहिये, जिससे हम भी उत्तम गति प्राप्त करें।

समाप्त